चन्दामामा
अगस्त १९७२
७०

Photo by: DEVIDAS KASBEKAR

राम और श्याम पॉपिन्स से चोर को पकड़ते हैं
रात अँधेरी सुनसान, नींद में खोये राम-श्याम
चोर आया घर में, फँसे दोनों मुसीबत में
चोर ने न चाहा धन, पॉपिन्स पर था उसका मन
कुत्ता भौंका...भौं भौं भौं, चोर चौंका...चौं चौं चौं
राम ने मचाया शोर, पकड़ा गया चोर
चखना होगा जेल का मज़ा, तेरे लिए यही सज़ा
राम-श्याम का बना काम, पॉपिन्स का मिला इनाम
रसीली प्यारी मजेदार
PARLE POPPINS
५ फलों के स्वाद—रास्पबेरी, अनानास, नीबू, नारंगी व मोसंबी.
हर पॅकेट में १३ गोलियां
पारले
पॉपिन्स
फलों के स्वादवाली गोलियां

चन्दामामा

संस्थापक : नागिरेड्डी
संचालक : 'चक्रपाणी'

इस महीने की बेताल कथा "धर्म की रक्षा" के द्वारा हमें यह विदित होता है कि अधर्म का विरोध करनेवाले लोग धर्म की स्थापना करने योग्य हैं, यह हम नहीं मान सकते। साथ ही अधर्म जब समाज में पूर्ण रूप से अपनी जड़े जमाता है, तब उसका निर्मूल करने के लिए कुछ व्यक्तियों के द्वारा किया जानेवाला प्रयत्न पर्याप्त नहीं है।

"कर्जवसूली" यह शिक्षा देती है जो कर्ज वसूलना नहीं जानते, उन्हें ब्याज का व्यापार करना नहीं चाहिए।

वर्ष : २६ अगस्त १९७३ अंक : २

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमा दपि
लोकोत्तराणाम् चेतांसि, को हि विज्ञातु मर्हति ॥ १ ॥

[वज्र से कठोर तथा फूलों से कोमल लोकोत्तर मन को कौन समझ सकता है?"]

अलोक सामान्य, मचिंत्य हेतुकम्
द्विषंति मंदा श्चरितम् महात्मानाम् ॥ २ ॥
(कालिदास)

[साधारण व्यक्तियों के लिए असाध्य तथा कारण की कल्पना न कर सकनेवाले महात्माओं के कार्य से मंद बुद्धिवाले द्वेष करते हैं ।]

अनुगन्तुम् सताम् वर्त्म
कृत्स्नम् यदि न शक्यते
स्वल्प म प्यनुगंतव्यम्
मारस्थो नावसीदति ॥ ३ ॥

[सत्पुरुषों के मार्ग का पूर्ण रूप से अनुसरण करना संभव न हो तो कुछ हद तक तो अनुसरण करना चाहिए । उत्तम मार्ग पर चलनेवालों का कभी नाश नहीं होता ।]

महात्माओं की रीति

दण्डी की अक्लमंदी

राहुलपुर का राजा शिलासिंह का जब देहांत हुआ, तब उसके इकलौते पुत्र बीरसिंह इक्कीस साल का था। वीरसिंह की माता उसके पांच महीने की उम्र में ही गुजर चुकी थी। शिलासिंह ने ही उसे बड़े ही प्रेम के साथ पाल-पोसकर बड़ा किया था।

अब पिता की मृत्यु के कारण मानों वीरसिंह पर वज्रपात-सा हो गया। वह दुख के सागर में डूब गया। उसका हित चाहनेवाले लोग अनेक थे। फिर भी उसे लगा कि वह एकाकी हो गया है और इस दुनिया में अपना कहनेवाला कोई नहीं है। उसकी ऐसी हालत हो गयी कि वह अपने कार्य भी कर नहीं पाता था, ऐसी हालत में वह राज-काज कैसे संभालता? वह दिन-रात अपने बिस्तर पर पड़ा रहता, अपने कमरे से बाहर तक न निकलता। धीरे धीरे वह मानसिक बीमारी का शिकार हो गया। वैद्यों ने अनेक प्रकार के इलाज किये, पर कोई फ़ायदा न हुआ। वह दिन ब दिन शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भी कमज़ोर होता गया।

राजवैद्य राजकुमार का इलाज न कर पाये, इससे मंत्री, सेनापति आदि गहरी चिंता में पड़ गये। एक समय था, जब राजकुमार बड़ा साहसी और शक्तिवान था। वह युद्ध-विद्याओं में कुशल था। उसने अपनी छोटी-सी आयु में ही एक चीते का सामना करके उसे मार डाला था। मगर उसके पिता की मृत्यु के साथ मानो उसके बल और साहस भी जाते रहे। अब वह छोटी-सी बात के लिए भी डर जाता था।

देश के सारे घन वैद्य राजकुमार का इलाज़ करके हार गये। ऐसी हालत में

दरबारी जादूगर ने प्रधान मंत्री के पास जाकर निवेदन किया–"महामंत्रीजी, कोई भी व्यक्ति राजकुमार में आत्मविश्वास पैदा नहीं कर पाये, क्या मैं एक बार प्रयत्न कर सकता हूँ?"

"देखो दण्डी, महा वैद्य भी राजकुमार का इलाज करके हार गये। ऐसी हालत में तुम मानते हो कि तुम्हारे इस जादू के द्वारा राजकुमार स्वस्थ हो जायेंगे?" महामंत्री ने कहा।

"प्रयत्न करने में नुक़सान ही क्या है?" जादूगर दण्डी ने कहा।

महामंत्री ने फीकी हँसी हँसते हुए कहा–"अच्छी बात है, तुम्हें निराश नहीं करना चाहता। एक बार प्रयत्न करके देख लो।"

दण्डी ने उसी वक़्त अपना प्रयत्न प्रारंभ किया। उसने राजकुमार के कमरे में प्रवेश करके कहा–"राजकुमार की जय हो! आज आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

बीरसिंह ने मंदहास करते हुए कहा–"मेरे स्वास्थ्य के बारे में क्या पूछते हो? मैं मरने जा रहा हूँ। अपने पिता से जा मिलूँगा। मेरी सारी शक्ति उन्हीं के साथ जाती रही। वे अब नहीं रहें, इसलिए मैं भी किसी काम का नहीं रहा। इस दुनिया में मेरा अपना कोई नहीं है।"

दण्डी ने राजकुमार की बीमारी का असली कारण जान लिया। राजकुमार अपने पिता पर हद से ज़्यादा आधारित था। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे अपना जीवन शून्य-सा प्रतीत हुआ और उसमें कायरता आ गयी। उसकी कायरता को दूर करे तो वह मामूली व्यक्ति बन सकता है!

राजकुमार की मानसिक व्यथा को दूर करने के लिए दण्डी ने चित्र-विचित्र कहानियाँ सुनायीं और उसे हँसाने का प्रयत्न किया। वह कुछ हद तक सफल भी हुआ। कुछ दिन बाद दण्डी ने देखा कि राजकुमार की चिंता घटती जा रही है।

दण्डी मौक़ा पाकर राजकुमार के समक्ष जादू का प्रदर्शन भी करता रहा। इस प्रकार हास्य कहानियाँ सुनते, जादू के प्रदर्शन देखते रहने पर राजकुमार में ऐसा परिवर्तन आया कि वह अब अपने कमरे से बाहर निकलता, दण्डी के साथ उद्यान में टहलता। राजकुमार में यह परिवर्तन देख प्रधान मंत्री आदि आश्चर्य में आ गये।

एक महीना और बीत गया, तब जाकर राजकुमार का मन स्वस्थ हो गया। वह जब तब दरबार में आने-जाने लगा। एक दिन वह दण्डी के साथ दरबार में जा रहा था, तभी छत पर से एक बिलाव चिल्लाते हुए उस पर कूद पड़ा। "बाघ! बाघ! मर गया! पिताजी, मुझे बचाइये।" यों चिल्लाकर वीरसिंह आँखें मूंद आपादमस्तक कांपने लगा।

दण्डी ने उसे समझाया—"राजकुमार, यह बाघ नहीं, बिल्ली है। आँखें खोलकर देख लीजिये! अकारण डरिये मत!"

वीरसिंह ने सकुचाते हुए आँखें खोलकर बिल्ली को देखा।

दण्डी ने बिल्ली को पकड़कर वीरसिंह को दिखाते हुए कहा—"इसे छूकर देखिये! यह बिल्ली है! आप नाहक़ डर गये। क्या आपको याद नहीं? आपने छुरी लेकर चीते को मार डाला था। अब भी चाहे आप खाली हाथों से चीते का वध कर सकते हैं।"

"इस वक़्त मुझ में वह ताक़त नहीं है। मेरे पिताजी की मृत्यु के साथ मेरा बल
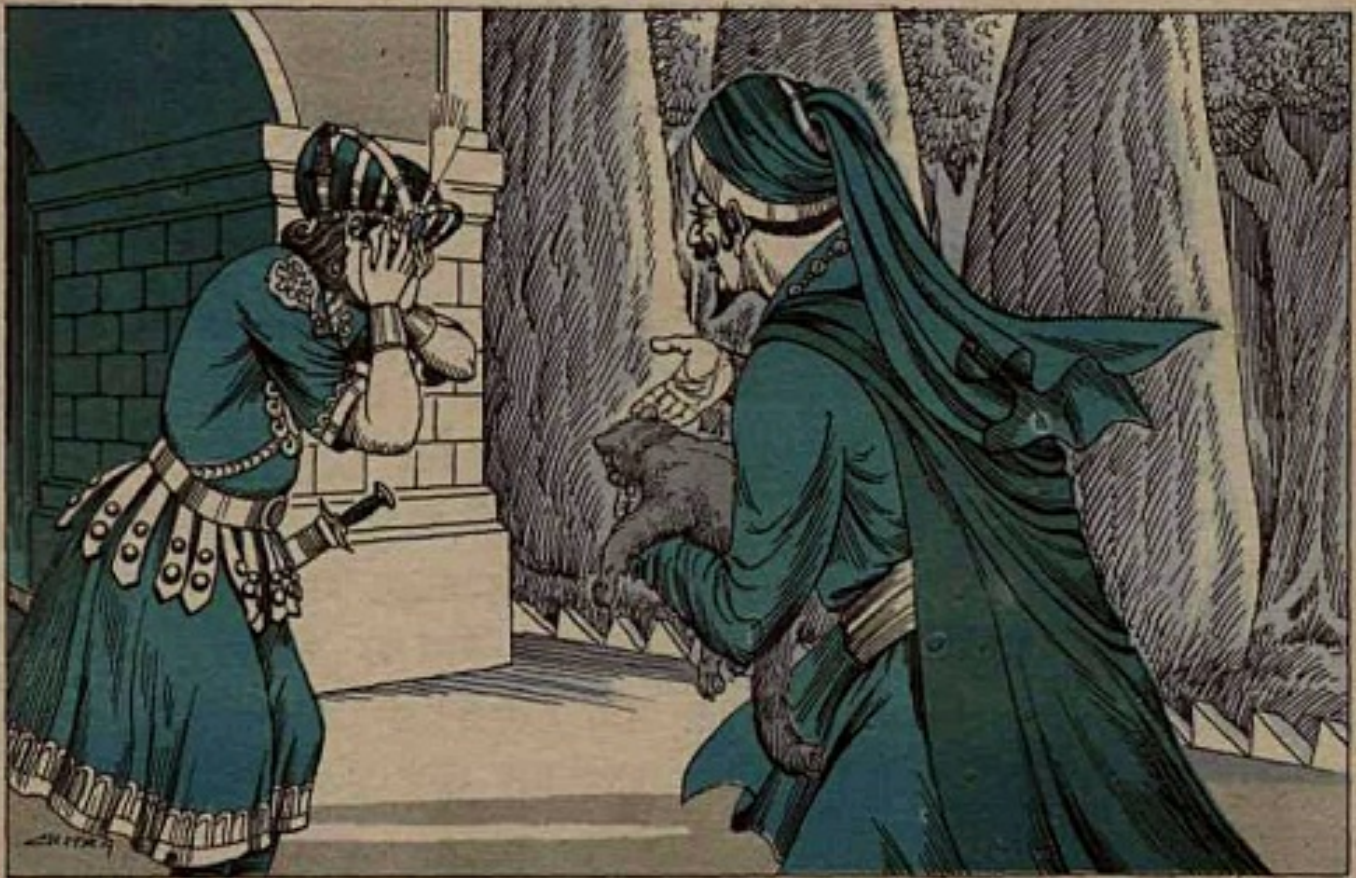
और साहस जाता रहा। मैं इस समय एक बच्चे से भी ज्यादा कमज़ोर हूँ।" वीरसिंह ने उत्तर दिया।

"यदि यह बात सच है कि आपकी सारी शक्तियाँ चली गयी हैं तो मैं अपने जादू के बल से उन शक्तियों को फिर दिला सकता हूँ! मेरी जादू की विद्याएँ तो आप देख ही रहे हैं!" दण्डी ने कहा।

"हाँ, हाँ, देख रहा हूँ।" वीरसिंह ने उत्तर दिया। "क्या मेरी अद्भुत शक्तियों पर आपका विश्वास नहीं है?" दण्डी ने पूछा।

"क्यों नहीं? मैंने आपकी अनेक अद्भुत शक्तियों को देखा है!" वीरसिंह ने जवाब दिया।

"और क्या? मेरी जादू की शक्तियों द्वारा आप पहले की तरह चीते को मारने जा रहे हैं!" दण्डी ने समझाया।

वीरसिंह ने निश्चल भाव से दण्डी की ओर देखा और आगे बढ़ा।

दण्डी ने ही छत पर से वीरसिंह पर बिल्ली को गिरवा दिया था। उसने इसलिए ऐसा कराया था कि वीरसिंह अपनी कायरता से नफ़रत करे और उसमें फिर से हिम्मत पैदा हो जाय! अब दण्डी ने वीरसिंह के द्वारा चीते को मरवा डालने के लिए आवश्यक प्रयत्न शुरू किया। तभी जाकर वीरसिंह के मन में अपने पराक्रम के प्रति विश्वास जमेगा।

दण्डी ने लकड़ी के दो पतले व हल्के तख़्तों को चीते के आकार में कटवा दिया। उन दोनों तख़्तों को जोड़ देने पर ऐसा दिखायी देगा कि चीता अपने पीछेवावाले पैरों पर उठ खड़ा हो! इसके बाद दण्डी ने लोहे की एक पतली नली ले ली, उसके मध्य भाग तथा सिरों पर भी मोड़ दिया (चित्र में देखिये) और दोनों तख़्तों के बीच इस तरह बिठाया जिससे वह बाहर दिखाई न दे, तब दोनों तख़्तों को जोड़ कर कीले ठोंक दिये; तब उस तख़्ते पर चीते का रंग पुतवा दिया। इसके बाद चीते की आकृति की नली में

रस्सी डाल दी जिससे चीते की मूर्ति रस्सी के बीच में हो, तब रस्सी के दोनों सिरों में से एक को पैर से दबाकर दूसरे सिरे को हाथ में पकड़कर रख सके।

इसके बाद दण्डी उस मूर्ति को लेकर राजकुमार के पास पहुँचा और बोला– "राजकुमार, यही चीते का यंत्र है। कृपया आप देख लीजिये कि इस बेजान खिलौने पर मेरा जादू कैसे काम करता है! प्राणियों पर मेरे जादू का जो प्रभाव होता है, उसे आप देख चुके हैं।"

दण्डी ने अब रस्सी के नीचे के सिरे को पैर से दबाया, ऊपर के सिरे को बायें हाथ से पकड़कर सीधे खड़ा किया। तब रस्सी के ऊपर खड़ा चीते का खिलौना रस्सी के साथ नीचे उतर आया। जब वह दण्डी के पैर तक पहुंचा, तब उसने रस्सी के साथ उस खिलौने को ऊपर उठाया, उस पर फूंक लगाकर कोई मंत्र पढ़ने लगा। इस पर खिलौना रस्सी के साथ फिर उतरने लगा।

"देखिये राजकुमार! इस खिलौने को मैंने मंत्रबद्ध किया है। अब यह जैसा मैं कहूँ वैसा सुनेगा!...ठहर जाओ!" दण्डी ने कहा।

रस्सी के साथ उतर आनेवाले चीते का खिलौना बीच में रुक गया। दण्डी ने कहा–"चलो।" फिर वह चलने लगा! यह विचित्र दृश्य देख वीर सिंह अत्यंत

प्रभावित हुआ। उसने आश्चर्य में आकर कहा–"तुम्हारी शक्ति अद्भुत है!"

दण्डी ने शांत स्वर में कहा–"राजकुमार, यह शक्ति पूर्ण रूप से मेरी नहीं है! इस यंत्र की महिमा में यह ताबीज मदद पहुँचाता है।" यों कहते अपने बायें हाथ में बंधे ताबीज को निकाल कर वीरसिंह के बायें हाथ में बाँध करके कहा–"इस क्षण से यह यंत्र आपके आदेश का भी पालन करेगा।" यों कहकर चीते के खिलौने को पहले ही जैसे ऊपर उठाकर पकड़ लिया। वह रस्सी के सहारे उतर आ रहा था। वीरसिंह ने कहा–"ठहर जाओ!" तुरंत वह खिलौना रस्सी के मध्य भाग में रुक गया।

बात यों हुई कि दण्डी ने जब रस्सी को ढीला पकड़ लिया था, तब खिलौना रस्सी के साथ उतर आया, लेकिन दण्डी ने जब रस्सी को खींचा, तब खिलौने के भीतर की नली में टेढ़ापन होने के कारण खिलौना रुक गया।

वीरसिंह यह बात नहीं जानता था, इसलिए वह आश्चर्य चकित हुआ। ताबीज के प्रति उसके मन में जो विश्वास जम गया उसके कारण उसके मन को भी बल प्राप्त हुआ। मानसिक बल के साथ धीरे धीरे शारीरिक बल भी बढ़ता गया।

एक योजना बनाकर एक दिन राजमहल के प्रांगण में एक चीते को छोड़ दिया गया। पहले ही दण्डी ने उसे अफ़ीम जैसी नशीली चीज़ खिलवायी थी। वीरसिंह ने दण्डी के साथ आकर चीते का सामना किया। चीता उसे देख दूर चला गया। वीरसिंह ने उसे भड़काया जिससे वह ऊपर उछल पड़ा। उस वक़्त वीरसिंह ने उस पर छुरी का प्रहार करके उसे मार डाला।

लोगों ने हर्षनाद किया–"महाराजा वीरसिंह की जय! महाराजा जिंदाबाद!" इस पर वीरसिंह का चेहरा आत्मविश्वास के कारण खिल उठा।

यक्ष पर्वत

[१४]

[गुरु भल्लूक के शिष्यों ने खड्गवर्मा तथा जीवदत्त को एक सुरंग मार्ग द्वारा भेड़ियोंवाली चट्टान के पास ले जाकर उस पर चढ़ाया। सवेरा होते ही भेड़ियों को खाना देने आये हुए गुरु भल्लूक के शिष्यों पर खड्गवर्मा ने बाण चलाये। यह समाचार मिलते ही गुरु भल्लूक पंचशूल लेकर चल पड़ा। बाद—]

खड्गवर्मा के बाण की चोट खाकर भल्लूक जाति का एक सेवक चिल्लाते हुए सुरंग में लुढ़क पड़ा। तब खड्गवर्मा और जीवदत्त को इस बात का संदेह हुआ कि उन्हें भेड़ियों से नहीं, बल्कि भल्लूक जाति के सेवकों के द्वारा खतरा पैदा होनेवाला है।

जीवदत्त ने सुरंग के ऊपर के द्वार की ओर थोड़ी देर ध्यान से देखा। उसके पास किसी सेवक को न आते देख जीवदत्त ने सिर घुमाकर कहा—"समरबाहू, जल्द ही हमें दोनों ओर से ख़तरा पैदा होने जा रहा है। एक तो हम जिस चट्टान पर खड़े हुए हैं, इसके नीचे स्थित सुरंग की ओर से और दूसरे, सामने दिखाई देनेवाले सुरंग के ऊपर के द्वार की ओर से, इसलिए हमें अत्यंत सतर्क रहना होगा। जल्दबाज़ी नहीं करनी है?"

यह बात सुनते ही समरबाहू का चेहरा सफ़ेद पड़ गया, उसने घबराये हुए स्वर में कहा–"हुजूर, आप दोनों हमारे नेता हैं। हमारे प्राणों की रक्षा आप ही कर सकते हैं। हमें आदेश दीजिये कि हमें क्या करना है?"

समरबाहू को घबराये देख खड्गवर्मा को हँसी आयी, वह अपनी हँसी को रोकने का प्रयत्न करते हुए बोला–"समरबाहू, हमें विघ्नेश्वर पुजारी तथा स्वर्णाचारी ने भी बताया था कि तुम सिंधु रेगिस्तान से इन पहाड़ी जंगलों में कोई साम्राज्य स्थापित करने के ख्याल से आये हुए हो! ऐसी हालत में तुम डरते क्यों हो? क्या इस खतरे से बचने का कोई उपाय तुम सोच नहीं सकते?"

"कोई उपाय! हूँ! हमारा दुश्मन अगर कोई क्षत्रिय होता तो तलवार खींचकर मैं उसका सामना करता और इस वक़्त उसका अंत कर देता। मगर इन भेड़ियों तथा भल्लूक के चर्मों को धारण कर मंत्र-तंत्रों का प्रयोग करनेवालों का सामना कैसे करूँ?" समरबाहू ने काँपते स्वर में उत्तर दिया।

समरबाहू की बातों पर जीवदत्त को भी हँसी आ गयी, उसने कहा–"समरबाहू, अब तुम्हें अपने पराक्रम का परिचय देने का अवसर आ गया है। हम जिस चट्टान पर खड़े हुए हैं, उसके नीचे के सुरंग से दुश्मन को ऊपर आने से तुम दोनों रोक दो। शायद अब तक गुरु भल्लूक को यह समाचार मिल गया होगा कि उसका एक शिष्य बाण की चोट खाकर मर गया है। देखें, अब वह क्या करनेवाला है?"

जीवदत्त की बात पूरी भी न हो पायी थी, तभी गुरु भल्लूक सुरंग के द्वार के निकट आया, भेड़ियोंवाली चट्टान पर खड़े बंदियों की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देख बोला–"अरे बदमाशो, तुमने वृकेश्वरीदेवी के भक्तों में से एक को बाण से मार

डाला। अब तुम लोगों को अपने पंचशूल में चुभोकर भेड़ियों का आहार बनाने जा रहा हूँ। मरने के लिए तुम सब तैयार हो जाओ।"

गुरु भल्लूक की आवाज सुनते ही तब तक सुरंग द्वार के नीचे खाने के वास्ते मचलनेवाले भेड़िये ज़ोर से गरजते हुए द्वार की ओर उछलने लगे। रोज़ ठीक उसी वक़्त उन्हें उस द्वार में से खाना दिया जाता था। समय पर खाना न मिलने पर भूख से परेशान भेड़िये सिर उठाये गरजने लगे।

गुरु भल्लूक ने द्वार में से झाँककर भेड़ियों की ओर देखा। उसे इस बात का डर भी लगा कि भेड़िये दस फुट ऊँचाई पर स्थित द्वार तक भी शायद उछल जायें। मगर यदि द्वार बंद करवा दिये जायें तो बन्दी उसे कायर समझेंगे... इसलिए वह इसी पशोपेश में वहीं पर निश्चल खड़ा रहा।

जीवदत्त ने ऐसा अभिनय किया, मानों उसने गुरु भल्लूक के विचारों को भाँप लिया हो, तब अपना दण्ड ऊपर उठाकर कहा—"अरे गुरु भल्लूक! मैं नहीं जानता कि तुम भल्लूक जाति के होकर भी किसी भल्लूकेश्वरी की पूजा न करके वृकेश्वरी की पूजा क्यों करते हो? शायद तुम मंद

बुद्धिवाले होगे! लो, मैं अभी चट्टान से उतरकर सुरंग द्वार से तुम्हारे पास आ रहा हूँ? भागो मत?"

समरबाहू को इस बात का डर लगा कि जीवदत्त जो कहेगा, सो करेगा, इसलिए उसे रोकते हुए बोला—"हुज़ूर, आप इन भूखे भेड़ियों के बीच में से चलकर गुरु भल्लूक के पास जाना चाहते हैं? यह खतरे से खाली नहीं है! गुरु भल्लूक मंत्र-तंत्र विद्याओं में पारंगत है!"

इस पर खड्गवर्मा ने अपने हाथ की तलवार को ऊपर उठाकर कहा—"समरबाहू, तुम नहीं जानते कि इस तलवार तथा जीवदत्त के हाथ के दण्ड में जो मंत्र-

शक्तियाँ हैं, वे अपूर्व हैं । इसलिए तुम गुरु भल्लूक को देख डरो मत!"

खड्गवर्मा की बातों के पूरा होने के पहले ही चट्टान के नीचे कोई भयंकर ध्वनि हुई । यह आवाज़ सुनते ही जीवदत्त ने अपने साथियों को सचेत करते हुए कहा-"तुम लोग सावधान रहो । गुरु भल्लूक चट्टान के नीचे स्थित सुरंग के द्वारा अपने कुछ शिष्यों को भेजकर हमारा अंत करना चाहता है!"

यह चेतावनी सुनते ही समरबाहू और उसके अनुचर भाले उठाकर चट्टान के नीचे के सुरंग की ओर ताकने लगे । तब सुरंग द्वार के पास खड़े गुरु भल्लूक अपने एक शिष्य को डांटते हुए बोला-"अरे कमबख्त! मैंने कहा था कि चुपचाप जाकर चट्टान के नीचे से अचानक उन दुष्टों पर हमला करे । मगर इन कमबख्तों ने हो-हल्ला मचाकर हमारे रहस्य को प्रकट कर दिया । अब क्या किया जाय? ये बन्दी साधारण व्यक्ति मालूम नहीं पड़ते! हथियारों के साथ उन्हें भेड़ियों की चट्टान पर चढ़वा देना हमारी ही मूर्खता है!"

जीवदत्त को गुरु भल्लूक की चाल मालूम हो गयी, इस पर उसने खड्गवर्मा से कहा-"खड्गवर्मा, अब तुम्हारा गुरु भल्लूक पर बाणों का प्रयोग करना बेकार है। तुम्हारे धनुष्य और बाणों की निशानेबाजी देखते ही वह सुरंग-द्वार से हट जायगा!"

"तुम ठीक कहते हो! मगर समरबाहू की रक्षा करके उसे स्वर्णाचारी के पास कैसे भेजा जायें?" खड्गवर्मा ने जीवदत्त से पूछा ।

जीवदत्त थोड़ी देर तक सोचता रहा, तब बोला-"खड्गवर्मा, इसके लिए मुझे एक उपाय सूझता है । हमने जंगल में सिंहों का शिकार करते पद्मपुर राजा के साथ परिचय कर लिया था, याद है न? उसी तरीक़े से इन भेड़ियों का शिकार

करके गुरु भल्लूक के सुरंगवाले दुर्ग में खलबली मचानी है।"

"अच्छी बात है! ऐसा ही करेंगे! फिर देरी ही क्यों?" खड्गवर्मा ने उत्साह में आकर कहा।

"अच्छी बात है! तुम उस मरे हुए भेड़िये को अपने कंधे पर डाल लो। उसके मांस के वास्ते बाक़ी भेड़िये तुम्हारा पीछा करेंगे, इसका मतलब यह नहीं कि तुम उनके पंजों में आ जाओगे तो तुम्हें प्राणों के साथ छोड देंगे! तुम्हें अपनी तलवार का भी भरपूर प्रयोग करना होगा!" जीवदत्त ने सुझाया।

खड्गवर्मा ने मरे हुए भेड़िये को उठाकर अपने कंधे पर डाल लिया। जीवदत्त की बातें तथा खड्गवर्मा की करनी समरबाहू की समझ में कुछ न आया। वह डरते हुए पूछ बैठा–"हुजूर! आप लोग यह क्या करने जा रहे हैं? मुझे तो डर लगता है?"

"समरबाहू, डरो मत! हमें कोई खतरा पैदा न होगा। तुम और तुम्हारा अनुचर सावधान रहो, अगर भल्लूक जातिवाले नीचे से चट्टान पर आने की कोशिश करें तो उन्हें भालों से चुभो-चुभो कर मार डालो। हम दोनों भेड़ियों के बीच उतर जायेंगे, अगर संभव हुआ तो उन्हें गुरु भल्लूक के सुरंग के दुर्ग में खदेड़ने की कोशिश करेंगे।" जीवदत्त ने समझाया।

"हुजूर! यह तो दुस्साहस होगा!" समरबाहू ने कहा।

"हो सकता है कि यह साहस का कार्य हो, मगर दुस्साहस कभी नहीं हो सकता! समरबाहू, शीघ्र तुम्हीं देखलोगे न?" जीवदत्त ने हँसते हुए कहा।

"जीवदत्त! बेकार की बातों में वक़्त बीतता जा रहा है! मैं कब तक भेड़िये की यह लाश ढ़ोता रहूँगा?" खड्गवर्मा ने पूछा।

"हम चट्टान पर से नीचे कूदने जा रहे हैं। तुम चट्टान के चारों तरफ़ दौड़ते

खड्गवर्मा उनसे अपने को बचाते हुए चट्टान के चारों ओर दौड़ने लगा। पीछे से जीवदत्त मंत्र दण्ड के द्वारा भेड़ियों पर प्रहार करते, उन्हें दूर फेंकते हुए, दौड़ने लगा। वह लाचार की हालत में ही भेड़ियों को मार डालता था, वरना उन्हें डराकर मंत्र दण्ड से ऊपर उठा कर दूर फेंक देता था।"

सुरंग द्वार के पास खड़े हो यह तमाशा देखनेवाला गुरु भल्लूक उत्साह में आकर उछल पड़ा। तालियाँ बजाते बोला—"यह सब वृकेश्वरीदेवी का महात्म्य है! अपने शत्रुओं का मति भ्रमण कराकर अपने वाहन भेड़ियों का उन्हें आहार बना रही हैं। वाह! वह माता खुद चाहे तो क्या नहीं कर सकतीं?" यों चिल्लाते भक्ति के आवेश में आँखें मूंदकर सिर उठाकर उसने ऊपर देखा।

तब तक भेड़ियों के पीछे दौड़ते उनसे बचकर चट्टान के चारों ओर घूमनेवाले खड्गवर्मा तथा जीवदत्त को गुरु भल्लूक की यह करनी अच्छे मौक़े सी लगी। जीवदत्त ने खड्गवर्मा को सचेत किया—"खड्गवर्मा, यही एक अच्छा मौक़ा है!"

खड्गवर्मा ने दूसरे ही क्षण अपने कंधे पर पड़े भेड़िये के मृत शरीर को बाये हाथ से ऊपर उठाकर गुरु भल्लूक के ऊपर

जहाँ तक हो सके, ज्यादा भेड़ियों को अपने पीछे दौड़ने के लिए आकर्षित करो। मैं तुम्हारे पीछे दौड़ता रहूँगा। बाद को..."

जीवदत्त की बातें पूरी होने के पहले ही खड्गवर्मा चिल्ला उठा—"अरे गुरु भल्लूक! हम लोग आ रहे हैं! तुम और तुम्हारी वृकेश्वरीदेवी के प्राण बचाने हो तो सुरंग दुर्ग को छोड़कर भाग जाओ।" यों कहते खड्गवर्मा भेड़ियोंवाली चट्टान पर से नीचे कूद पड़ा।

दो आदमियों को मरे हुए भेड़िये को कंधे पर डाल अपने बीच में आये देख भूखे भेड़िये एक साथ गरज उठे और खड्गवर्मा तथा जीवदत्त की ओर झपट पड़े।

सुरंग के द्वार की ओर फेंक दिया। अपने आहार को द्वार की ओर फेंकते देख चार-पाँच भूखे भेड़िये ऊपर उछल कर द्वार में कूद पड़े। आँखें मूंदकर ध्यान में निमग्न गुरु भल्लूक पर मृत भेड़िये के शव के साथ चार पाँच भड़िये भी आ गिरे।

"हा वृकेश्वरी!" चिल्लाते गुरु भल्लूक भेड़ियों के धक्के से नीचे जा गिरा, और उसके उठने के पूर्व ही "भेड़िये! भेड़िये!" चिल्लाते गुरु भल्लूक के शिष्य सुरंग के द्वार से भाग खड़े हुए।

गुरु भल्लूक काँपते हुए उठ खड़ा हुआ। उससे थोड़ी ही दूर पर मृत भेड़िये पर कुछ भेड़िये झपट कर उसे नोच-नोच कर खाने लगे। एक भेड़िये ने मृत भेड़िये पर झपटना चाहा, पर असफल हो दाढे बढ़ाकर गुर्राते हुए गुरु भल्लूक पर झपटने को तैयार हो गया। इसे देख गुरु भल्लूक अपने शूल का निशाना बनाकर गरज उठा—"वृकेश्वरी के प्रधान भक्त को ही तुम खाना चाहते हो?" यों कहते एक एक क़दम पीछे की ओर बढ़ाते सुरंग मार्ग में भाग खड़ा हुआ।

द्वार के नीचे बचे हुए भेड़ियों को उकसाकर खदेड़ने का प्रयत्न करनेवाले खड्गवर्मा और जीवदत्त को यह मालूम न हुआ कि सुरंग के भीतर क्या हो रहा है! वे यह नहीं जान पाये कि गुरु भल्लूक को किसी भेड़िये ने मार डाला है या नहीं!

"खड्गवर्मा, अब हमारे यहाँ रहने से कोई फ़ायदा नहीं, हमें यह मालूम नहीं होता कि गुरु भल्लूक मरा है या जिंदा। मगर यह बात सच है कि सुरंग में गये भेड़ियों ने उन दुष्टों को घबराहट में डाल दिया है। सुरंग में जो हलचल हो रही है, तुम्हें सुनायी दे रही है न?" जीवदत्त ने पूछा।

"सुनाई क्यों नहीं देती? मेरा शक है कि वे कायर लोग अब तक सुरंग को छोड़ जंगल की ओर भाग गये होंगे। लेकिन गुरु भल्लूक को हमें प्राणों के साथ नहीं छोड़ना है!" खड्गवर्मा ने अपना दृढ़ निश्चय सुनाया।

"तब तो यहाँ पर वक़्त क्यों बरबाद करे? हम सब इस सुरंग मार्ग से भीतर घुस पड़ेंगे। समरबाहू और उसके अनुचर को यहाँ पर जल्द बुला लो।" जीवदत्त ने कहा।

खड्गवर्मा की पुकार सुनते ही समरबाहू और उसका अनुचर भेड़ियों की चट्टान पर से उतरकर उनके पास आ पहुँचे। जीवदत्त ने उन लोगों से कहा-"समरबाहू, हम ऊपर के द्वार से सुरंग में प्रवेश करने जा रहे हैं।"

समरबाहू ने एक बार चारों ओर नजर दौड़ायी और सहमी हुई आवाज में कहा- "हम चार लोग सुरंग में रहनेवाले इतने सारे लोगों को हरा सकते हैं? यह अच्छा होगा कि हम यहीं से भागकर जंगल में जाने के लिए कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ निकाले।"

"यह भेडियोंवाली चट्टान है! यहाँ से बाहर जाने के लिए सुरंग में से ही एक रास्ता है!" यों कहते जीवदत्त उछल कर सुरंग द्वार पर चढ़ गया। उसके पीछे खड्गवर्मा भी वहाँ पहुँचा।

समरबाहू और उसका अनुचर यह सोचते वहीं पर खड़े ही रह गये कि क्या किया जाय! तभी उन पर झपट कर उन्हें खाने के लिए वहाँ के भेड़िये एक एक करके उनकी ओर बढ़ने लगे!

(और है)

धर्म की रक्षा

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–" राजन्, क्या तुम धर्म और अधर्म का विचार करके ही इस काम में प्रवृत्त हुए हो? धर्म की रक्षा करना सरल काम नहीं है। इसके उदाहरण के रूप में मैं तुम्हें गजाधर नामक प्रसिद्ध चोर का वृत्तांत सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: प्राचीनकाल में राजा मदनवर्मा वसंतनगर पर शासन करता था। वह भोगलालसी था। सदा शराब पीता और शासन के कार्यों में बिलकुल दिलचस्पी न लेता था। उसने राज्य का सारा भार अपने मंत्रियों तथा सेनापतियों पर छोड़ रखा था। वे अपने अधिकारों

बेताल कथाएँ

का दुरुपयोग करते जनता को तंग किया करते थे।

मगर सभी देशों में राजा मदनवर्मा की यह ख्याति फैली हुई थी कि वह बड़ा ही धर्मात्मा है। इसका कारण यह था कि राजा साल में दो बार बड़े यज्ञ कराते, ब्राह्मणों को दावत देते और उन्हें खूब पुरस्कार देकर उनकी प्रशंसा तथा आशीर्वाद पाते। यज्ञों के लिए अपार धन और वस्तुओं की आवश्यकता होती थी। सरकारी कर्मचारी गाँवों से धन और वस्तुओं का संग्रह करते। यज्ञ के समाप्त होते ही सारे देश में दरिद्रता का तांडव होता। जनता का जीवन दुर्भर होता गया। इस हालत में गजाधर नामक एक लुटेरा पैदा हुआ। वह व्यापारियों और राहगीरों को लूटता था। उसका नाम सुनते ही लोग थर-थर काँप उठते थे।

एक साल राजा ने हमेशा की भाँति एक यज्ञ कराया, ब्राह्मणों तथा सन्यासियों को पुरस्कार देकर उनका सत्कार किया। रामशर्मा नामक एक ब्राह्मण राजा के द्वारा सत्कार पाकर स्वर्ण मुद्राएँ ले जंगल के रास्ते से अपने गाँव के लिए चल पड़ा।

जंगल में चलते समय रामशर्मा को डर लगा। इसलिए वह उच्च स्वर में श्लोक पढ़ते अपने रास्ते जा रहा था, तभी गजाधर ने अपने दल के साथ रामशर्मा को घेर लिया और गरजकर कहा—"जनता कड़ी मेहनत करके जो अनाज एवं धन पैदा करती है, उसे लूटकर तुम लोग यज्ञ करते हो! एक ओर जनता राजकर्मचारियों के शोषण से परेशान है, वास्तव में वे ही लोग यज्ञ के बलि पशु हैं! ऐसे यज्ञों के द्वारा क्या पाप का नाश होगा? तुम जैसे लोग ऐसे पाप का अन्न खाकर, राक्षस जैसे राजा को धर्मात्मा बताते हो और कई वर्षों तक चिरंजीवी रहकर शासन करने के आशीर्वाद देते हो! इस तरह तुम लोग अधर्म का पोषण करते हो! स्वर्ण मुद्राओं को यहाँ पर

रखकर चले जाओ, तुम एक गरीब ब्राह्मण हो, इसलिए तुम्हें प्राणों के साथ छोड़ देता हूँ।"

रामशर्मा ने उत्तर दिया–"आपका कहना बिलकुल सही है, लेकिन आप थोड़ा विचार करके देखिये कि आप जो कुछ कर रहे हैं, वह धर्म है या नहीं?"

"मैं अधर्म का सामना करता हूँ। इसलिए मैं जो करता हूँ, वह धर्म है! इस देश का राजा असमर्थ है। इसके राज कर्मचारी राक्षस हैं। लूटने में भी मैं भले-बुरे का ख्याल रखता हूँ, पर राजा मनमाने कराते हैं।" गजाधर ने कहा।

"तब तो आप धर्म की स्थापना क्यों नहीं करते? जनता की रक्षा और उन्हें शांति क्यों नहीं प्रदान करते?" रामशर्मा ने गजाधर से पूछा।

"यह कार्य तभी हो सकता है, जब यह देश मेरे हाथों में हो! लेकिन यह कैसे संभव है?" गजाधर ने पूछा।

गजाधर को खुश करने के ख्याल से रामशर्मा बोला–"क्यों संभव नहीं? बस, प्रयत्न करना होगा! चोरों के कितने सरदार चक्रवर्ती नहीं बने?"

गजाधर रामशर्मा का उत्तर सुनकर सोच में पड़ गया। उसके दिमाग में कभी ऐसा विचार न आया था। सोचने पर उसका राजा बनना उसे असंभव प्रतीत न हुआ। रामशर्मा की चाल चल निकली।
"तुमने बड़ी अच्छी सलाह दी, मैं
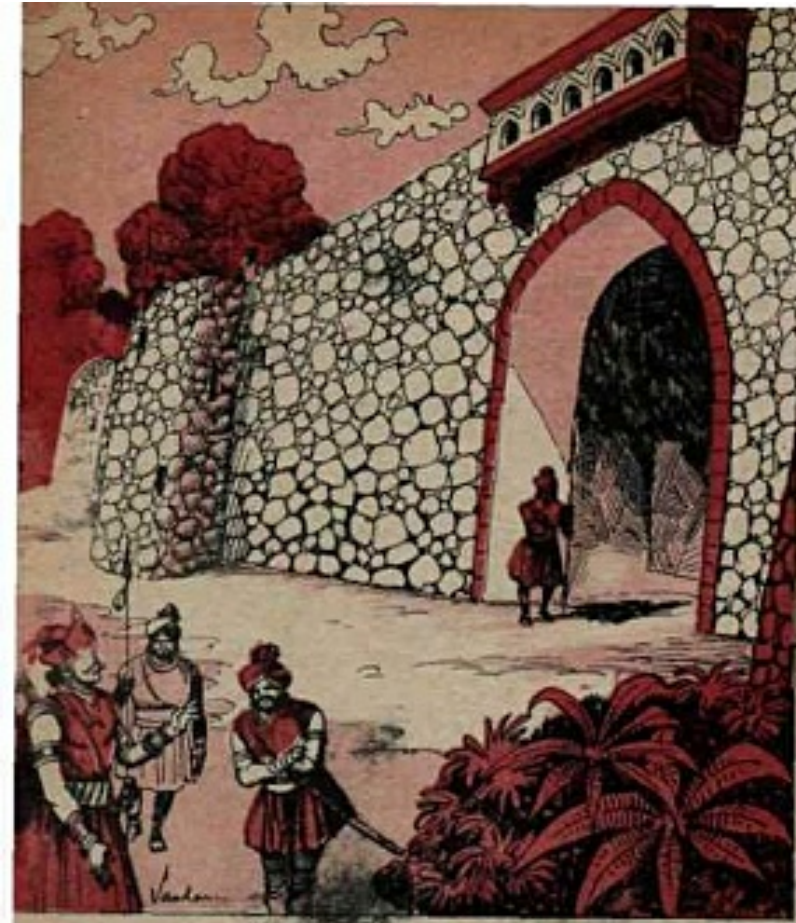
कोशिश करके देखूंगा। राज्य में धर्म की स्थापना करूँगा। तुम गरीब हो। अपना धन लेते जाओ।" गजाधर ने कहा।

गजाधर बड़ा ही विचारवान था। उसने उसी दिन राजा बनने की योजना बनायी। राज्य भर के चोर व डाकुओं के दलों को अपने प्रभाव तथा डरा-धमकाकर अपने अधीन में ले लिया। चोर और लुटेरे निहत्थों को डराना व मारना ही जानते हैं, मगर वे युद्ध-विद्याएँ नहीं जानते! अपने नेतृत्व में आये हुए सभी चोरों को उसने सैनिकशिक्षण दिलाया।

गजाधर ने यह आश्वासन देकर कई गाँवों पर क़ब्जा कर लिया कि राजकर्मचारियों से उनकी रक्षा करेगा, उन्हें लूटने से बचायगा, सब को समान रूप से न्याय मिलेगा, बदले में सब इसके पूर्व राजा को जो कर चुकाते थे, वे उसी को चुकावे। उसने अपने इस वादे का पालन किया और उन गाँवों में राजा के शासन को उठवा दिया।

अब गजाधर भी एक छोटा-सा राजा बन चुका था। जंगल के बीच उसका अपना एक क़िला था। अपने ही राज्य में एक और राजा को देख मदनवर्मा आश्चर्य चकित हो गया। राजा की समझ में न आया कि गजाधर का अपना राज्य स्थापित करते देख आज तक राजकर्मचारी देखते चुप कैसे रह गये? राजा ने सब को डाँटा, आखिर अपनी सेना को लेकर जंगल में पहुँचा और गजाधर के क़िले पर धावा बोल दिया।

जंगल में मदनवर्मा को हार खानी पड़ी। क्योंकि जंगल को लड़ाई का मैदान बनाया नहीं जा सकता। रात के समय पेड़ों पर से तथा पेड़ों की ओट में से भी गजाधर के सैनिकों ने बाणों का प्रहार किया। अग्नि बाण छोड़कर राजा मदनवर्मा के शिविर को जला डाला। राजा तथा उसके साथ रहनेवाले कई मुख्य सैनिक अधिकारी शिविर के साथ जल मरे, साथ ही अनेक सैनिक भी मारे गये।

दूसरे ही दिन गजाधर अपनी सेना के साथ राजधानी में गया, मदनवर्मा के पुत्र को राजमहल में ही बन्दी बनाकर उसने अपना पट्टाभिषेक करने का अदेश दिया।

कुछ लोगों ने यह संदेह प्रकट किया– "गजाधर का वंश क्या है? जो क्षत्रिय नहीं, उसे राजा बनने की योग्यता नहीं है!"

यह बात सुनकर राजपुरोहित ने कहा– "वीर गजाधरेश्वर महाराजा अत्युत्तम क्षत्रिय हैं। इनका वंश सूर्यवंश है। ये श्रीरामचन्द्रजी की एक सौ आठवीं पीढ़ी के हैं। इनका वंश-वृक्ष पहले से ही मेरे पास था।" यों उसने पहले ही तैयार की हुई सूची पढ़ सुनायी।

राजपुरोहित की बातें सुन गजाधर फूला न समाया। उसने यक़ीन किया कि वह सचमुच क्षत्रिय है। राजपुरोहित के प्रति उसका पूर्ण विश्वास जम गया। पट्टाभिषेक का कार्यक्रम राजपुरोहित सुना रहा था, तब उसे ऐसा लगा कि वह इन सारी बातों से भली भाँति परिचित है।

गजाधर अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार शासन करता, राजोचित जीवन बिताते हुए सेनापतियों की सलाह के मुताबिक़ उसने पड़ोसी राजाओं के साथ युद्ध किया और अपने राज्य का विस्तार भी किया। इतने में यज्ञ का समय आ पहुँचा।

"महाराज, इस वर्ष आपको एक ऐसा महा यज्ञ करना होगा जो आज तक किया

न गया हो!" राजपुरोहित ने गजाधर से कहा। यह बात गजाधर को भी समुचित प्रतीत हुई।

राजकर्मचारियों ने यज्ञ के लिए आवश्यक सारी सामग्री इकट्ठी की। गाँवों तथा शहरों में जाकर सोना और धन लूट लाये। भारी पैमाने पर ब्राह्मणों को भोज दिया गया। गजाधर ने ब्राह्मणों को दिल खोलकर पुरस्कार दिये और उनके आशीर्वाद पाये। प्रत्येक ने उसे आशीर्वाद दिया कि सौ साल तक जीवित रहकर राज्य-शासन करे।

ब्राह्मणों की उस पंक्ति में रामशर्मा भी था। गजाधर को लगा कि उसने उस ब्राह्मण को कहीं देख लिया है। रामशर्मा ने और अधिक पुरस्कार पाने की आशा से पूछा—"महाराज, क्या मुझे पहचान सकते हैं? आपने अपने वचन का पालन किया। धर्म की रक्षा करके आदर्श शासक बने! आप दस पीढ़ियों तक राज्य करें, हम आपकी छत्र-छाया में सुखी रहेंगे।"

रामशर्मा की बातें सुनते ही गजाधर का चेहरा फीका पड़ गया। उसने जैसे-तैसे पुरस्कार बाँटे और जल्दी अपने अंतःपुर में चला गया। उसी रात को उसने मदनवर्मा के पुत्र को बंदीगृह से मुक्त करने तथा उसका पट्टाभिषेक करने का आदेश मंत्री को गुप्त रूप से दिया, और वह एक घोड़े पर सवार हो कहीं चला गया।

मंत्री ने दूसरे दिन घोषणा की कि महाराजा भौतिक जीवन से विरक्त होकर तपस्या करने जंगलों में चले गये हैं और मदनवर्मा के पुत्र को राजगद्दी पर बिठाया।

फिर से जंगल में एक लुटेरा हलचल मचाने लगा। मगर इस बार यह अफ़वाह फैल गयी कि वह लुटेरा बड़ा ही रहम दिल है और अमीरों को लूटकर वह संपत्ति गरीबों में बाँट रहा है! सब को यह बात भी मालूम हो गयी कि वह लुटेरा और कोई नहीं, बल्कि सिंहासन को त्याग जंगल में गया हुआ गजाधर ही है!

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा–"राजन, गजाधर राजा बनकर धर्म की स्थापना करना चाहता था, राजा बनने के बाद वह अपना वह कार्य न करके लुटेरे के रूप में क्यों बदल गया? जिसने यज्ञों का विरोध किया, उसीने राजा बनने पर यज्ञ क्यों किया? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुड़े हो जायगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों कहा–"अधर्म को चालू रखने में बलावान के लिए बड़ी आसन बात है। इसके लिए जनता के सहयोग की भी आवश्यकता नहीं है। पर धर्म की रक्षा करना बड़ा कठिन है। इसके लिए सब बर्गों के लोगों के सहयोग की ज़रूरत है। गजाधर केवल अधर्म का सामना करना जानता था। उसने सोचा था कि उसके राजा बनने पर वह आसानी से धर्म की स्थापना कर सकता है। लेकिन उसके राजा बनने के बाद उसे मालूम हुआ कि राजा पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है, राजधर्मों का निर्णय करनेवाली शक्तियाँ अनेक हैं, उनका विरोध किये बिना राजा भी कुछ नहीं कर सकता है। ऐसा विरोध करना राजा के रूप में जन्म धारण कर शासन करनेवाले के लिए ही संभव है, मगर राहगीरों को लूटनेवाले के लिए नहीं। उसे लगा कि राजा बनकर अधर्म का साथ देने की अपेक्षा लुटेरा ही रहकर अधर्म का सामना करना संभव है। इसलिए वह पुनः डाकू बन गया। सब ने मिलकर उसे इस बात के लिए राजी किया था कि राजा बनकर अनेक राज्य जीतने पर यज्ञ करना आवश्यक है। उस यज्ञ के किये बिना उसका विरोध करने की शक्ति भी उसमें उस वक़्त न रही। इससे उसे मालूम हुआ कि राजा कैसे अस्वतंत्र है। इसलिए उसने आखिर अपनी स्वतंत्रता को ही चुना।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

परीक्षा

कावेरी नदी के तट पर शंकरभट्ट नामक एक पंडित था जो विद्यार्थियों को स्वयं खाना देकर विद्या का दान करता था। उसके पास अनेक विद्यार्थी वेद और शास्त्र पढ़कर लौटते थे।

जगन्नाथ नामक एक विद्यार्थी ने बहुत समय तक बड़ी लगन के साथ शिक्षा पायी, पर कुछ समय बाद शंकर भट्ट को संदेह हुआ कि पढ़ाई के प्रति जगन्नाथ की अभिरुचि कम होती जा रही है। यह बात उसने अपनी पत्नी से बतायी।

"जब शिक्षा के प्रति जगन्नाथ की अभिरुचि बिलकुल घट जायगी, तब मैं बताऊँगी।" पंडिताइन ने जवाब दिया।

एक दिन रोज की भांति खाना परोसकर पंडिताइन ने चावल पर एरंडी का तेल डाल दिया। जगन्नाथ ने चावल के साथ मिला कर एक कौर मुंह में रख लिया और पूछा-"माताजी, क्या आपने एरंडी का तेल परोस दिया है?"

"जी हाँ, बेटा! मैं इतने सालों से बराबर चावल में एरंडी का तेल ही डालती आ रही हूँ। पर शिक्षा के प्रति तुम्हारी इतनी अभिरुचि थी कि तुम्हारा ध्यान ही इस ओर नहीं गया। अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी है, इसलिए अभी तुम समझ पाये।" शंकरभट्ट की पत्नी ने कहा।

उसी दिन शंकरभट्ट ने जगन्नाथ को अपने घर भेज दिया।

कर्ज वसूली

एक गाँव में धर्मदास नामक एक धनी था। वह धर्मात्मा था। गाँव के लोगों को धर्मदास कम ब्याज पर समय पर कर्ज देता और लोगों की मदद करता था। कर्ज वसूली में भी उसे कोई तक़लीफ़ न होती थी।

अपना कर्ज वसूल करने के तरीक़े धर्मदास के पास अनेक थे। एक बार रामशर्मा नामक एक स्वाभिमानी ब्राह्मण ने धर्मदास से पचास रुपये कर्ज लेते हुए पूछा–"आप बिना गवाह और कागज लिखाये मुझे कर्ज दे रहे हैं, अगर मैं कर्ज न चुकाऊँ तो आप क्या करेंगे?"

इस पर धर्मदास ने हँसकर कहा– "आप जैसे भले मानस के लिए कागज़ की लिखाई और गवाही की क्या ज़रूरत है? मुझे उम्मीद है कि आप ठीक वक़्त पर मेरा कर्ज ज़रूर चुकायेंगे। अगर आप नहीं चुकाते हैं तो मैं समझूंगा कि किसी भिखारी को मैंने दान कर दिया है। पचास रुपये के न मिलने से मेरा कोई बड़ा नुक़सान भी नहीं होता।"

स्वाभिमानी रामशर्मा ने समय पर अपना कर्ज चुकाया।

धर्मदास के पड़ोस में कनकदास नामक एक मूर्ख अमीर था। कनकदास लालची था। वह जानता था कि ब्याज का व्यापार करे तो ज़्यादा धन कमाया जा सकता है। मगर कर्ज वसूल करने की तरक़ीब वह नहीं जानता था। धर्मदास से वह यह तरक़ीब सीखना चाहता था। मगर उसे इस बात का यक़ीन न था कि धर्मदास उसे यह उपाय बतायेगा। क्योंकि यह तो व्यापार का राज है!

कुछ समय बाद कनकदास के मन में एक विचार आया। धर्मदास की कर्ज-वसूली

संतोष पारीक

का उपाय जानना हो तो उससे कर्ज लेना होगा। इसलिए उसी दिन कनकदास ने धर्मदास के पास जाकर सौ रुपये कर्ज माँगा।

धर्मदास ने आश्चर्य में आकर पूछा- "क्या मैं आपको कर्ज दूँ?"

"क्या बताऊँ? एक जरूरी खर्च आ पड़ा है। मेरा हाथ इस वक़्त बिलकुल खाली है। आपके सिवा इस वक़्त कोई भी मेरी मदद करनेवाला नहीं है। अगले महीने में मैं आपका कर्ज चुकाऊँगा।" कनकदास ने कहा।

धर्मदास ने कहा-"अच्छी बात है! ऐसा ही करूँगा।" यों कहकर वह घर के भीतर चला गया, एक सौ रुपयों के साथ एक पत्थर भी ले आया और कहा- "एक बार इस पत्थर को छू लीजिये।"

कनकदास ने पूछा-"क्यों?"

"यूँ ही, बात कुछ नहीं।" धर्मदास ने हँसते हुए कहा।

कनकदास पत्थर को छूकर एक सौ रुपये अपने हाथ में लेने लगा। तभी धर्मदास ने कहा-"ब्याज एक महीने के दो रुपये लगेंगे।"

कनकदास ने भाँप लिया कि उससे ज्यादा ब्याज वसूलना चाहता है, फिर भी उसका उद्देश्य धर्मदास के व्यापार का रहस्य जान लेना है, इसलिए वह कुछ बोले बिना रुपये लेकर चला गया।

कई महीने बीत गये, पर उन दोनों के बीच रुपयों की ज़िक्र न हुई।

कनकदास ने पाँच महीने तक इस विचार से इंतज़ार किया कि धर्मदास अपने कर्ज का ज़िक्र करेगा, पर उसके द्वारा रुपये माँगते न देख कनकदास ने सोचा कि धर्मदास अपने रुपयों की बात बिलकुल भूल गया होगा और ज्यादा दिन तक वह इंतजार न कर पाया, इसलिए उसने खुद धर्मदास के पास जाकर पूछा- "आपने इतने दिनों से मुझसे अपने कर्ज के रुपये वापस नहीं माँगे, क्या आप भूल गये हैं?"

"भला! मैं क्यों भूल जाऊँगा? देरी होने से मेरा ही लाभ होगा। मुझे आपसे ज्यादा ब्याज़ मिलेगा न?" धर्मदास ने कहा।

"अगर मैं कर्ज न चुकाऊँ और आपके रुपये दबा लूँ तो?" कनकदास ने पूछा।

"ऐसा आप नहीं कर सकते! आपने रुपये लेते समय मेरे पास के पत्थर को छू लिया है न! वह पत्थर अपनी महिमा रखता है! उसे छूनेवाला कोई भी व्यक्ति मेरे रुपये दबा नहीं सकता!" धर्मदास ने समझाया।

इस रहस्य के मालूम होते ही कनकदास ने सोचा–'ओह, असली बात यह है!' फिर पल भर सोचकर कहा–"धर्मदासजी! मेरा कर्ज वसूल नहीं होता। मैं बड़ा ही परेशान हूँ। आप मेहर्बानी करके अपने पत्थर को थोड़े दिन के लिए मेरे पास रख दीजिये। मैं अपना कर्ज वसूल करके फिर आपको लौटा दूँगा।"

"यह कौन बड़ी बात है! मेरे पास दो पत्थर हैं। एक को मैं आपके हाथ बेच देता हूँ। आप एक वर्ष तक अपने पास रख लीजिए। यदि इस पत्थर से आपका काम नहीं बना तो आपके रुपये लौटाकर मैं अपना पत्थर वापस लें लूंगा।" धर्मदास ने समझाया।

कनकदास ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक पूछा–"आपके इस पत्थर का क्या मूल्य है?" क्योंकि उसका विचार था कि उस पत्थर को खरीदने से उसका कोई नुक़सान न होगा।

"एक सौ दस रुपये इस पत्थर का मूल्य है।" धर्मदास ने जवाब दिया।

कनकदास तुरंत अपने घर लौट गया। एक थैली भर रुपये लेकर वापस आया और बोला–"धर्मदासजी! घर में ज़्यादा रुपये नहीं हैं। मैं एक सौ दस रुपये लाया हूँ। ये रुपये लेकर फिलहाल यह पत्थर मुझे दिला दीजिये। आपका कर्ज बाद को चुका लूंगा।"

"अच्छी बात है। देरी होने से ब्याज़ भी तो बढ़ता जाएगा।" यों कहते धर्मदास ने एक सौ दस रुपये ले लिये और कनकदास के हाथ वह पत्थर देकर भेज दिया।

पत्थर के हाथ लगने के बाद कनकदास ने गाँव के अनेक लोगों को बुला भेजा और बड़ी हिम्मत के साथ उन्हें कर्ज दिये। कनकदास इस बार बिना लिखा-पढ़ी व गवाही के सब को उधार दे रहा था। इसे देख ज़्यादा ब्याज का भी ख्याल किये बिना कई लोगों ने उससे कर्ज लिये। जिस जिसने पत्थर को छू लिया, उन सब को कनकदास ने कर्ज दे दिया।

महीने बीतते गये। कनकदास के यहाँ से कर्ज लेनेवालों की संख्या बढ़ती गयी। पर कोई कर्ज चुकाने का नाम तक न लेता था। सात-आठ महीने मौन रहने के बाद कनकदास ने जाकर धर्मदास से शिकायत की।

धर्मदास ने सलाह दी कि एक साल तक इंतज़ार करके देखे।

एक वर्ष भी बीत गया। उधार देकर कनकदास काफ़ी धन खो बैठा था। एक ने भी चुकाया न था। तब वह पत्थर लेकर कनकदास धर्मदास के यहाँ गया और क्रोध में आकर बोला–"तुमने मुझे सरासर धोखा दिया है। तुम्हारी बातों में आकर मैंने बहुत-सा धन खो दिया है।"

"अरे भाई! वह पत्थर मेरे पास अच्छा काम देता था, मैं क्या करूँ?" धर्मदास ने जवाब दिया।

"मेरा सर काम किया है? एक साल बीत गया। मेरा कर्ज तक तुमने वसूल नहीं किया। तुम्हारे पत्थर में कोई महिमा नहीं है।" कनकदास ने कहा।

"मेरा कर्ज वसूल क्यों नहीं हुआ? ब्याज के साथ कभी वसूल हो गया है। मैंने वह पत्थर तुम्हें मुफ़्त में दिया था। तुमने मुझे जो रुपये दिये थे, उन्हें मैंने अपने कर्ज में जमा कर लिया है।" धर्मदास ने मंदहास करते जवाब दिया।
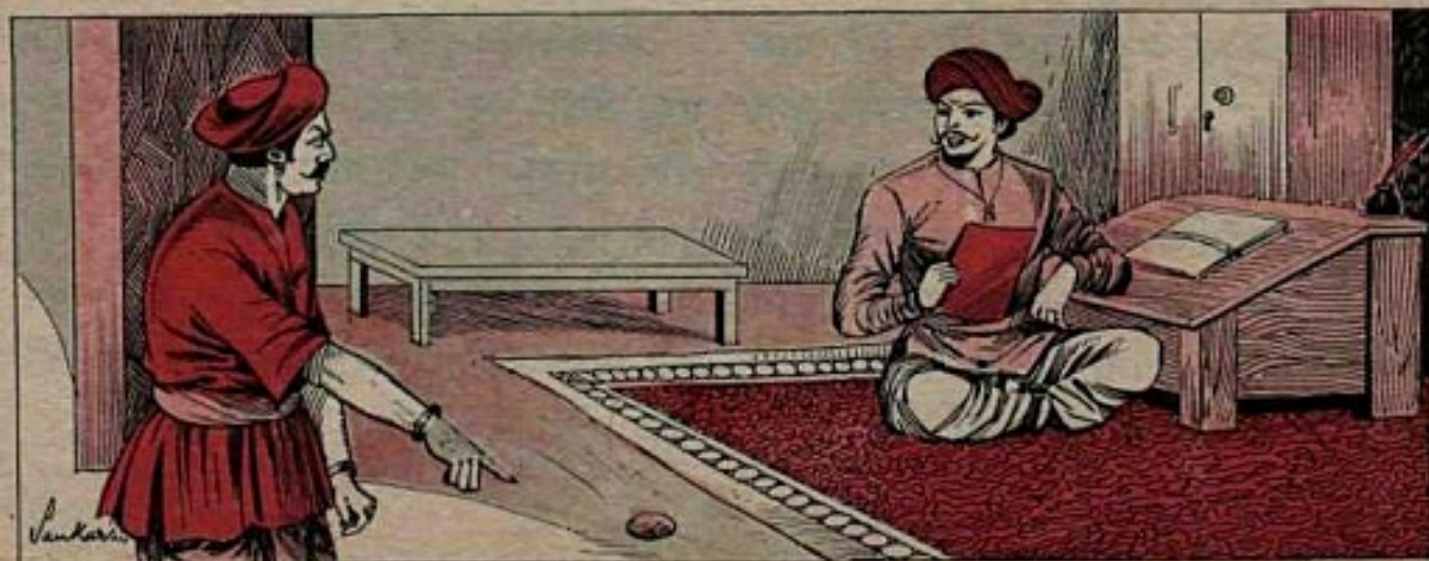
ताजा माल

एक दूकान के सामने यह लिखा हुआ था–"यहाँ पर ताजा मछलियाँ बेची जाती हैं।" कई लोग आकर मछलियाँ ख़रीद रहे थे। एक ने एक मछली को हाथ में ले पहले अपने मुँह के पास, फिर अपने कान के पास थोड़ी देर रख कर बाद को उसे एक चटाई पर फेंक दिया।

मछली बेचनेवाले ने यह तमाशा देख उसका मज़ाक करते हुए पूछा–"देखो भाई, यहाँ पर सड़ी-गली मछलियाँ बेची नहीं जातीं। फिर भी तुम इसकी बू देखना चाहो तो नाक के पास रखकर देखो, मुँह और कान के पास कहीं रखा जाता है?"

"मैं मछली की बू नहीं देखता हूँ, इससे बात करता हूँ।" ग्राहक ने जवाब दिया।

वहाँ पर जमा हुए सभी ग्राहक उस व्यक्ति की ओर विस्मय के साथ देखने लगे।

"ओह, ऐसी बात है! तब तो माछली ने तुम से क्या कहा?" दुकानदार ने पूछा।

"मैं समुद्र से तीन दिन पहले यहाँ आयी हूँ। मैं कोई ताजा ख़बर नहीं जानती, जिससे आपको कुछ सुनाऊँ?" यही बात मछली ने मुझ से बतायी है।" ग्राहक ने झट जवाब दिया।

उसकी बातें सुन सब ग्राहक हँस पड़े, दुकानदार का सिर लज्जा के मारे झुक गया।

अपूर्व दृश्य

कावेरी नदी के किनारे नारायण नामक एक सन्यासी था। अयाचक उसका शिष्य था। वे दोनों एक बार रामेश्वरम की यात्रा पर चल पड़े।

रास्ते में नारायण एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा, तब अपने शिष्य को पानी लाने भेज दिया। अयाचक पानी की खोज में चल पड़ा। उसने देखा कि एक पेड़ के नीचे बैठे एक आदमी खाने की पोटली खोल रहा है। अयाचक यह सोचकर उसकी ओर बढ़ा कि शायद उसके पास पानी होगा, या कम से कम वह यह बतायेगा कि कहाँ पर पानी मिल सकता है!

अयाचक को देखते ही वह मुसाफ़िर जल्दी जल्दी अपनी पोटली बटोरकर कहीं भाग गया। अयाचक ने सोचा कि मुसाफ़िर शायद इस ख्याल से भाग गया होगा कि उसे अपना खाना अपनी ओर बढ़नेवाले व्यक्ति को देना पड़ेगा। वह मुसाफ़िर भागते पानी गिराकर चला गया था।

अयाचक उस मुसाफ़िर के व्यवहार पर मन ही मन मुस्कुराया। पानी की खोज करके लोटा भरकर वापस लौटा। वह दूसरे नजदीक़ के रास्ते से अपने गुरु के पास आ रहा था, तभी उसने देखा कि रास्ते पर किसी का शव पड़ा हुआ है। उसके बाजू में गिरे खाने को कौए खा रहे थे। वह मुसाफ़िर कोई और न था, बल्कि वही था जो अयाचक को देख भाग गया था। रोटी के गले में अटक जाने के कारण वह मुसाफ़िर दम तोड़ बैठा था। उसके बगल में लोटा पड़ा हुआ था, पर उसमें पानी न था।

अयाचक यह सोचकर अपने गुरु के पास लौट आया कि यह मुसाफ़िर अतिथि को पानी देने से भी बचना चाहता था,

दिनेशबर्मा

इसलिए इसे उचित दण्ड मिल गया है! उसने लौटकर सारी बातें बतायीं।

"मुसाफ़िर के शव को यों ही छोड़ना ठीक नहीं, चलो, उसका दहन-संस्कार करें!" गुरु ने कहा। गुरु के साथ अयाचक शव के पास पहुँचा। उसके आदेश पर लकड़ी और आग भी ले आया।

शव जब जल रहा था तब सन्यासी ने आकाश में उठनेवाले धुएँ को देख कहा—"अच्छा हुआ, इसे स्वर्ग की प्राप्ति हो गयी! यह बे मौत मरा, फिर भी मेरी इच्छा सफल हुई!"

पर अयाचक को कुछ दिखाई नहीं दिया। उसने गुरु से पूछा—"यह अतिथि को खाना तक न देनेवाला पापी है, इसे स्वर्ग की प्राप्ति कैसे संभव है?"

"उसने जो कुछ पाप और पुण्य किये थे, वे उसकी मौत के साथ चुक गये। हो सकता है कि इसने अनजाने में ही पुण्य कार्य किये हो। इसके मरते समय इसकी जानकारी के बिना ही उसका खाना पक्षियों तथा अन्य प्राणियों को प्राप्त हुआ हो! मैंने इस विश्वास से इसकी अंत्येष्ठि क्रिया की कि इस एक कारण से ही सही इसे स्वर्ग प्राप्त हो जाय! मेरे उद्देश्य की पूर्ति के होते मैंने अपनी आँखों से देखा है।" नारायण ने कहा।
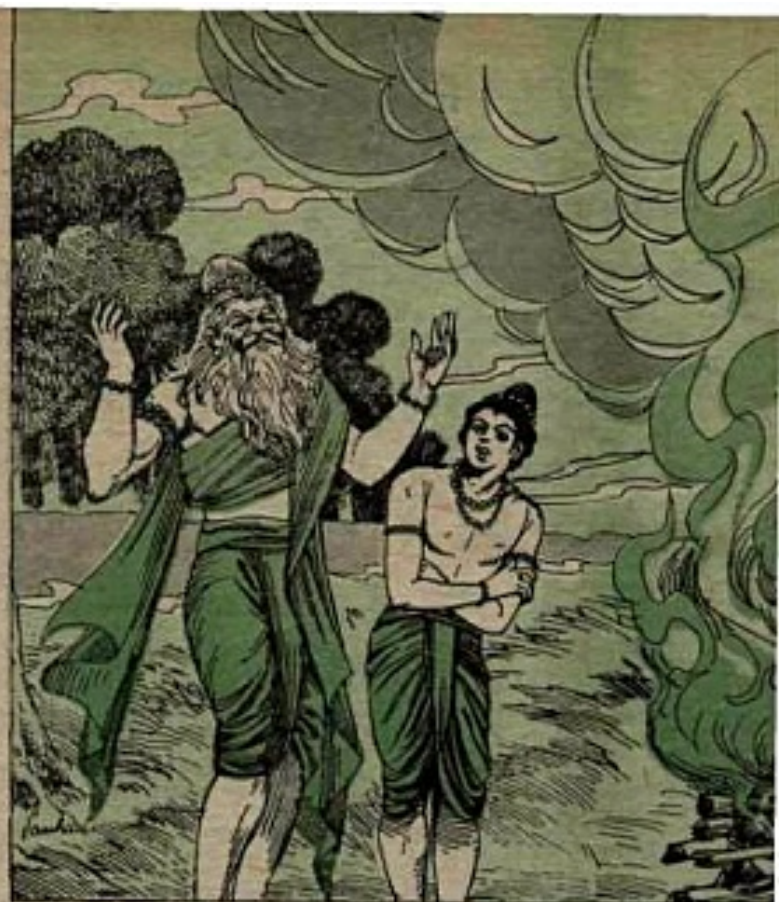
"तो फिर मेरी आँखों को कुछ नहीं दिखायी दिया?" अयाचक ने पूछा।

"इसका एक कारण बताता हूँ, सुनो!" यों गुरु ने अयाचक को एक कहानी सुनायी।

कई साल पहले कुमारिल भट्ट नामक एक ज्ञानी था। वह वैदिक कर्मों के अनुष्ठानों में विश्वास रखता था। उन दिनों में बौद्ध धर्मावलंबी वैदिक धर्म के विरुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। उनके तर्क का खण्डन करना हो तो उनके धर्म के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसलिए कुमारिल भट्ट बौद्ध भिक्षु का वेष धारण कर प्रयाग के एक बौद्ध विहार में पहुँचा और उस धर्म के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने लगा।

धीरे धीरे बौद्ध धर्म के अनुयायियों को मालूम हो गया कि कुमारिल भट्ट बौद्ध धर्म का बड़ा शत्रु है। अपने धर्म के रहस्यों को जाननेवाले को प्राणों के साथ छोड़ देना उचित नहीं है। यह विचार करके कुमारिल भट्ट को सातवीं मंजिल से नीचे गिरा दिया। नीचे गिरते समय कुमारिल भट्ट ने अपने मन में सोचा– "यदि वेद सत्य हैं तो मैं सुरक्षित नीचे गिरूँगा।" इसी प्रकार वह बिना चोट के नीचे गिरा। मगर उसकी एक आँख में कंकड़ चुभने के कारण उसे बड़ी पीड़ा हुई।

कुमारिल भट्ट ने अपने गुरु से पूछा था कि वह वेदों के प्रति ऐसा गहरा विश्वास रखता है, फिर भी उसकी एक आँख को ऐसी पीड़ा क्यों हुई?

"तुमने वेदों के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं किया, बल्कि यह संदेह प्रकट किया कि 'यदि वेद सत्य हैं तो मैं सुरक्षित नीचे गिरूँगा।' इसलिए तुम्हें पीड़ा हुई। यदि तुम यह सोच लिये होते कि 'सच्चे वेद मुझे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचायेंगे।' तो तुम्हें यह पीड़ा न होती।" कुमारिल भट्ट के गुरु ने समझाया था।

संन्यासी ने यह कहानी सुनाकर अयाचक से पूछा–"क्या अब तुम्हारी समझ में आ गयी कि मैंने जिस दृश्य को देखा, वह तुम्हें क्यों दिखायी नहीं दिया?"

"मेरी समझ में नहीं आता कि उस

पुण्यात्मा की और इस पापी की कहानी में क्या संबंध है?" अयाचक ने पूछा ।

"तब तो एक और कहानी सुनो । तुम्हें दोनों का संबंध मालूम हो जायगा ।" यों नारायण ने एक कहानी सुनायी :

सुनंद नामक एक भक्त ने एक योगी के यहाँ नरसिंह मंत्र का उपदेश पाया और नरसिंह का साक्षात्कार करने के ख्याल से ध्यान में निमग्न हो गया । उस वक़्त एक बहेलिया एक हिरण का पीछा करते वहाँ आ पहुँचा और सुनंद से पूछा–"इस ओर एक हिरण आया है, क्या तुमने देखा?"

"नहीं, मैं आँखें मूंद ध्यान में निमग्न था । मैं कैसे उसे देख सकता हूँ?" सुनंद ने जवाब दिया ।

"तुम कौन हो? यहाँ पर यों क्यों बैठे हुए हो?" बहेलिये ने फिर पूछा ।

सुनंद ने सोचा कि शिकारी को बड़ी बड़ी बातें समझ में न आयेंगी, इसलिए उसकी समझ में आने लायक़ भाषा में कहा–"मैं भी तुम जैसे एक शिकारी हूँ । तुम हिरण के वास्ते घूम रहे हो । मैं भी एक जानवर के वास्ते ध्यान कर रहा हूँ ।"

"वह कैसा जानवर है?" शिकारी ने पूछा । सुनंद ने नरसिंह अवतार का वर्णन करके सुनाया ।

"जंगल में रहनेवाले सभी जानवरों को मैं जानता हूँ, तुम जिस जानवर के बारे में कहते हो, वह कहीं नहीं है ।" शिकारी ने कहा ।

"वह ज़रूर है, मगर तुम्हें दिखायी नहीं देता।" सुनंद ने कहा।

"आप ज्ञानी हैं और कहते हैं कि वह जानवर है, इसलिए वह जहाँ भी हो, मैं उसे खोज-ढूंढ़कर पकड़ लाऊँगा! आप क्यों नाहक़ मेहनत करें!" यों कहकर शिकारी चला गया। उसने सारे जंगल को छान डाला, पर वह कहीं नहीं दिखायी दिया। वह अपने वचन का पालन नहीं कर पाया, इसलिए वह फाँसी लगाने को हुआ।

उस वक़्त शिकारी को एक ऐसा जानवर सामने दिखाई दिया जो आधा मनुष्य और आधा जानवर था। शिकारी ने फाँसी का फंदा अपने गले से हटाकर उस जानवर के गले में डाल दिया, उसे सुनंद के पास लाकर बोला—"लीजिये, आप जो जानवर चाहते थे, वह आखिर मिल ही गया।" यों उस जानवर के शरीर पर हाथ फेरते उसे सुनंद को दिखाया।

सुनंद को कुछ नहीं दिखायी दिया। पर उसे ये शब्द सुनायी दिये।

"हे सुनंद, तुमने सोचा था कि गुरु के उपदेश न पानेवाले शिकारी क्षुद्र है और मैं उसे दिखाई न दूंगा, मगर तुम्हारे ध्यान की अपेक्षा उसका विश्वास बड़ा है!"

सुनंद ने आँसू बहाते शिकारी से कहा—"तुम विश्वास नामक फंदे से उस जानवर को पकड़ पाये। मैं भ्रम में पड़ गया था कि समाधि की अवस्था में ही मैं उस जानवर को देख सकता हूँ। इसलिए विश्वास ही बड़ी चीज़ है!"

यह कहानी समाप्त करके नारायण सन्यासी ने अयाचक से पूछा—"क्या अब समझ गये हो कि मुझे जो दृश्य दिखाई दिया, वह तुम्हें क्यों दिखायी नहीं देता?"

"जी हाँ! आपने इस विश्वास के बल पर मुसाफ़िर की अंत्येष्ठि-क्रियाएँ कीं कि उसके पाप धुल जाए और उसे मुक्ति प्राप्त हो, इसीलिए वह दृश्य आपको दिखायी दिया। मुझमें ऐसा विश्वास न था, इसलिए मैं देख न पाया।" अयाचक ने जवाब दिया।

धोखे की वजह !

एक बार एक राजा के मन में यह संदेह पैदा हुआ कि बड़े बड़े बुद्धिमान भी किसी न किसी बात में धोखा क्यों खाते हैं ?

देश के धुरंधर विद्वान राजा के पास आये, पर राजा के संदेह का कोई निवारण न कर पाया। इस पर राजा ने घोषणा की कि जो व्यक्ति उसके संदेह को दूर करेगा, उसे आधा राज्य दिया जायगा। राजा ने सोचा कि हर कोई आकर तंग न करेगा। यह सोचकर यह घोषणा भी करायी कि जो राजा के सवाल का सही जवाब न देगा, उसका सिर कटवा दिया जायगा। इससे डरकर कोई भी राजा के सामने न आया।

एक दिन एक युवक राजा के पास आया। उसने राजा से गुप्तवार्ता करने की बात कहकर राजा से पूछा–"महाराज, मैं आपके पड़ोसी राजा कांचनवर्मा का अंतरंग मित्र हूँ। आपने एक बार उनको हराने का प्रयत्न किया, पर आपको सफलता न मिली। कल हमारे राजा वन कपालेश्वरी की पूजा करने जंगल में आ रहे हैं। उन्होंने अकारण ही मेरे भाई को फांसी पर लटकवा दिया है। कल आप वेष बदलकर मेरे साथ आइये। उन्हें बंदी बना लीजिये, तभी जाकर मेरा क्रोध शांत होगा।"

राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन उस युवक के साथ जंगल में गया। वहाँ पर चार आदमियों ने राजा को घेरकर उन्हें पकड़ लिया। राजा चिल्ला उठा– "धोखा! दगा है!"

"क्षमा कीजिये महाराज! मैं आप ही का नागरिक हूँ। यह साबित करने के लिए मैंने यह स्वांग रचा कि मनुष्य को धोखा खाने का असली कारण लालच है!" युवक ने कहा। राजा ने आधे राज्य देकर अपनी कन्या का भी उसके साथ विवाह किया।

एक गाँव में एक कंजूस ज़मीन्दार था। उसके यहाँ कोई भी मज़दूर दस दिन से ज़्यादा ठहर न पाता था। अगर कोई कुछ समय तक काम करता तब भी काम के पूरा होते ही ज़मीन्दार कोई न कोई बहाना करके उसकी मज़दूरी न देकर भगा देता।

मगर मलूक दास नामक एक भोला आदमी ज़मीन्दार के पिता के जमाने से ही उस घर में काम करता आ रहा था। ज़मीन्दार उसे मज़दूरी के रूप में कुछ दे या न भी दे, अपना काम किया करता था। क्योंकि वह एक स्वामिभक्त चाकर था। ज़मीन्दार जो कुछ मजूरी देता, वह उसके लिए काफ़ी न था।

एक बार ज़मीन्दार ने कोई बहाना करके मलूक की पूरे महीने की तनख्वाह मार ली। वह उस तनख्वाह की रक़म के लिए बड़ा लालाइत था, पर खाली हाथ उसे घर लौटना पड़ा। इसलिए उसकी औरत और बच्चे बहुत दुखी हुए।

मलूक के रामदीन नामक चौदह साल का एक लड़का था, जो यह अन्याय सह नहीं पाया। उसने अपने पिता से कहा—"तुम्हारी मजूरी के पैसों से हम ज़िंदा नहीं रह सकते। अब तुम आराम करो। कल से मैं काम पर जाऊँगा।"

दूसरे दिन रामदीन को काम पर आये देख ज़मीन्दार ने पूछा—"तुम कौन हो?"

"मैं मलूक दास का बेटा हूँ। मेरा नाम रामदीन है।" रामदीन ने दिया।

"तुम्हारे बाप को क्या हो गया है?" ज़मीन्दार ने पूछा।

"आइंदा मैं ही काम पर आऊँगा। एक महीना में ही आपके यहाँ काम करना

सुमित्रा नारंग

चाहता हूँ, महीने के पूरा होते ही तनख्वाह देकर मुझे भेज दीजिये।" रामदीन ने कहा।

रामदीन के मुँह से एक महीने की मोहलत का नाम सुनते ही ज़मीन्दार के मन में लोभ पैदा हुआ। क्योंकि उसे धोखा देने में मोहलत रखने से ही मौक़ा मिल सकता है।

"सुनो रामदीन, मैं भी जो काम तुम्हें सौंपू, करना होगा। चाहे वह किसी भी तरह का काम क्यों न हो, तुम आनाकानी नहीं कर सकते! तुम्हारी इच्छा हो तो काम पर लग जाओ।" ज़मीन्दार ने कहा।

रामदीन ने इस शर्त को मान लिया। उसने सोचा कि कोई नामुमकिन काम उसे सौंप दे तो वह जब चाहे तब काम छोड़ सकता है। ज़मीन्दार ने उसे मकई के खेत को पानी सींचने और पहरा देने का काम उसे सौंप दिया। ज़मीन्दार भी जानता था कि महीना भर हो जाने के बाद रामदीन को खाली हाथ कैसे भेज दिया जाय।

अब महीना पूरा होने को था। खेत की कटाई का समय भी निकट आया था।

एक दिन ज़मीन्दार खेत देखने आया और रामदीन से बोला–"देखो रामदीन,
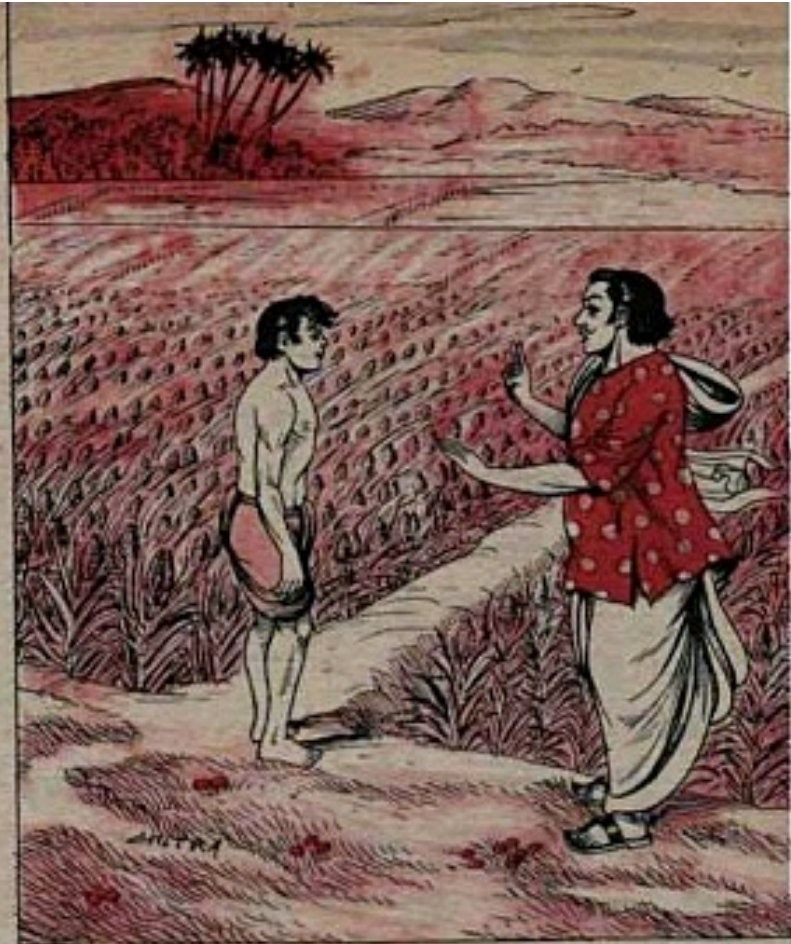
हमारे खेत में कुछ डंटलों के दो-दो भुट्टे लगे हैं और कुछ डंडलों के एक-एक! ऐसा कभी नहीं होना चाहिए। ऐसे हो कि हर एक डंटल के दो-दो भुट्टे ज़रूर हो।" यों कहकर अपनी अक़्लमंदी पर मन ही मन मुस्कुराते चला गया।

रामदीन भी कम ख़ुश न हुआ। दो-तीन दिन बाद ज़मीन्दार फिर खेत देखने आया। उसे आश्चर्य हुआ, क्योंकि प्रत्येक पौधे के दो-दो भुट्टे थे। पर दूसरे ही क्षण रामदीन की करतूत उसकी समझ में आ गयी। उसने एक भुट्टेवाले पौधों को उखाड़कर भुट्टे हड़प लिये थे। लेकिन उसे दोष दिया नहीं जा सकता था। क्योंकि

ज़मीन्दार ने ही खुद बताया था कि खेत के हर पौधे के डंटल में दो भुट्टे हो!

इस बार ज़मीन्दार ने कहा–"रामदीन, यह कैसी बात है! कहीं मकई के खेत में हर पौधे के दो भुट्टे थोड़े ही होते हैं? यह क्या अस्वाभाविक नहीं है? सब खेतों के जैसे हमारा खेत भी हो!" यों कहकर ज़मीन्दार चला गया।

तुरंत रामदीन ने कुछ पौधों से एक-एक भुट्टे तोड़कर बस्ती में भेजकर बिकवा दिया।

दूसरे दिन ज़मीन्दार खेत देखने आया तो उसने देखा कि कुछ पौधों के एक एक ही भुट्टे हैं। इस पर गुस्से में आकर ज़मीन्दार बोला–"अरे दुष्ट, तुम इसलिए मेरे यहां काम पर लगे हो? मैं तुम पर फ़रियाद करता हूं!" यों कहते ज़मीन्दार जाने को हुआ।

रामदीन उसके पीछे चलते बोला–"मालिक! आपने पहले ही शर्त लगायी थी कि आप जो काम कहे, उसे चुपचाप करता जाऊं! मना न करूं! जैसे आपने कहा, वैसे मैंने किया। इसलिए आप कहीं भी जाकर कोई भी फ़रियाद कीजिये, फ़ायदा न होगा।"

ज़मीन्दार जानता था कि यह बात सच है। यदि वह फ़रियाद करेगा कि वे सारी बातें प्रकट हो जायेंगी, वह कई लोगों की मजूरी मार बैठा था। इसलिए वह इस बात को यहीं पर समाप्त करना चाहता था। मगर दूसरे दिन रामदीन ज़मीन्दार के घर पहुंचा और बोला–"मालिक, आपके भुट्टे बेचने से जो रुपये मिले हैं, सो आप ले लीजिये! मेरे बाप और मुझ को भी न्यायपूर्वक महीने की जो तनख्वाह मिलनी है, सो मैंने इन रुपयों में से काट ली है!"

रामदीन की ईमानदारी पर ज़मीन्दार खुश हो बोला–"रामदीन! इतने समय बाद तुम मेरे योग्य नौकर मिल गये हो। आज से न्यायपूर्वक तुम्हारी तनख्वाह दूंगा।" रामदीन इनकार न कर पाया। उसने भी खुशी से मान लिया।
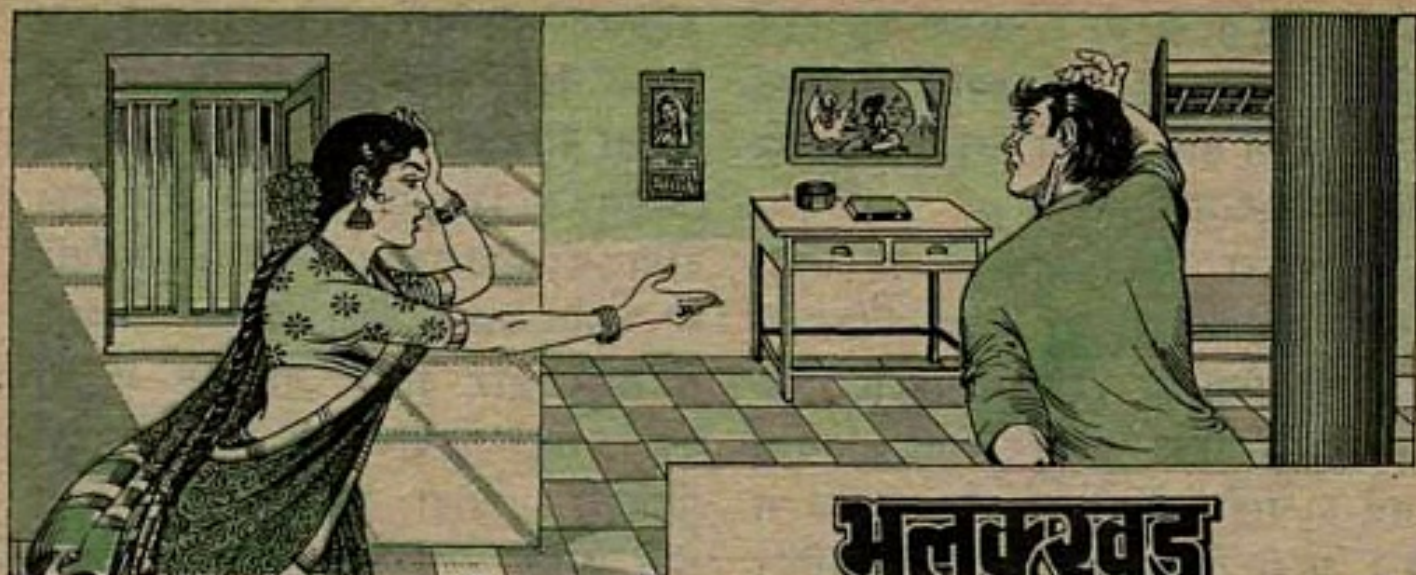
भुलक्खड़

एक गाँव में सोमगिरि नामक एक भुलक्खड़ आदमी था। बचपन से ही वह भुलक्खड़ था। किसी अभागे ससुर ने सोमगिरि के साथ अपनी कन्या का विवाह किया। सोमगिरि के पड़ोसी गाँव में ही उसका ससुराल था।

एक बार दीपावली पर्व आया। सोमगिरि का ससुर अपनी कन्या और दामाद को बुला ले जाने आ पहुँचा। निमंत्रण देकर जाने के पहले दामाद से बोला– "तुम और मेरी बेटी दोनों कल सुबह आ जाओ।"

अपने ससुर के चले जाने के बाद सोमगिरि यह बात बिलकुल भूल गया कि वह किस काम से आया था। बड़ी देर तक सोचता रहा, आखिर हारकर अपनी पत्नी से पूछा–"तुम्हारे पिता किसलिए आये थे?"

"तुम्हारे भुलक्खड़पन को क्या कहें? त्योहार पर हमें घर बुलाने आये।" यों खीझे हुए स्वर में पत्नी ने जवाब दिया।

दूसरे दिन पति-पत्नी बड़े ही तड़के जाग गये। पत्नी ने पति को आदेश दिया– "आज हम अपनी ही बैल गाड़ी में जायेंगे, गाड़ी को तैयार कर दो।"

पिछवाड़े में पड़ी गाड़ी को सोमगिरि आँगन में खींच लाया। गाड़ी में भूसा डाल दिया और उस पर कंबल बिछाया। अब दोनों रवाना होने ही वाले थे कि घर पर ताला लगाने के लिए ताला नहीं मिला। इस पर सोमगिरि अपनी पत्नी को डाँट बैठा–"तुम भुलक्खड़ बन गयी हो! जाकर ढूंढ लो, कहीं तुमने फेंक दिया होगा!" यों कहते सोमगिरि ने अपने हाथ की चीज़ को आले में रख दिया। आश्चर्य की बात यह थी कि वह चीज़ और कोई

राधेश्याम भटनागर

न थी, वह ताला था। शायद वह ताले को भूल न जाय, इस ख्याल से उसने ताला अपने हाथ में रख लिया था। पर उसे वह खुद भूल गया।

"तुम्हारा सिर! हाथ में ही ताला रखकर तुम ने सारा घर ढुंढ़वा दिया।" यों पत्नी सोमगिरि पर बरस पड़ी।

घर पर ताला लगाकर दोनों आँगन में आये। गाड़ी तो तैयार थी, पर बैल न थे। गाड़ी तैयार करते समय सोमगिरि बैलों की बात भूल गया था। उनका मज़दूर बैलों को खेत में हाँक ले गया था।

आखिर दोनों किराये का ताँगा करके ससुराल चल पड़े। तांगे को तेज़ी से भागते देखते सोमगिरि खुशी में आकर चिल्ला पड़ा–"वाह! हमारे बैल घोड़ों जैसे भागते जा रहे हैं, देखो तो सही!"

"मेरी बदक़िस्मती थी कि तुम जैसे मर्द मिले मुझे!" पत्नी चीख उठी।

दुपहर तक दोनों ससुराल में पहुँचे। ताँगे का किराया देना भूलकर घर में जानेवाले सोमगिरि को देख तांगेवाला पूछ बैठा–"बाबू साहब, मेरा किराया तो दिलवा दीजिये!"

ससुर ने किराया दे दिया और अपने दामाद को भीतर बुला ले गया। सोमगिरि की पत्नी अन्दर चली गयी। बरामदे में ससुर और दामाद बातचीत में खो गये। ससुर ने दामाद के लिए मिठाइयाँ मँगवायीं। थोड़ी देर बाद ससुर पानी लाने अन्दर चला गया। लौटकर देखता क्या है, दामाद बरामदे में नहीं है। आश्चर्य में आकर वह घर के आँगन में स्थित चबूतरे पर आया। उसने देखा कि उसका दामाद तांगे में बैठे चला जा रहा है। ससुर ने चिल्लाकर पूछा–"दामादजी, कहाँ जा रहे हो?"

तांगे में ही बैठे दामाद चिल्लाकर बोला–"घर जा रहा हूँ। घर में आपकी बेटी अकेली है। वह बेचारी अकेली रहने से डरती है।" ससुर के देखते देखते तांगा आँखों से ओझल हो गया।

स्वर्ग की प्राप्ति

एक आदमी ने लौकिक जीवन के पूरे सुख भोगे, आखिर स्वर्ग पाने के ख्याल से जंगल में जाकर तपस्या करने लगा।

एक दूसरा आदमी संसार से विरक्त हो जंगल में जा पहुँचा। वहाँ पर उसने देखा कि एक व्यक्ति पहले से ही आकर तपस्या कर रहा है।

तपस्या करनेवाले को देख दूसरे व्यक्ति ने सोचा कि उसकी सेवा करके वह भी स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है। इस विचार से दूसरे ने प्रथम व्यक्ति से पूछा—"महात्मा, आप मुझे अपने शिष्य बना लीजिए।"

"मुझे किसी की सेवा की जरूरत नहीं, मेरा ध्यान भंग न करो।" यह कहकर पहले व्यक्ति ने आँखें मूंद लीं। दूसरे ने सोचा—"इस तपस्वी के तप में विघ्न डालने से बचाना ही पुण्य है!" यह सोचकर वह भी तपस्या करने लगा।

दूसरा व्यक्ति तप करते हुए भी इस बात का ध्यान रखने लगा कि कोई पशु या पक्षी तपस्वी के तप में विघ्न न डाले। अगर कोई पशु-पक्षी वहाँ आ जाता तो उन्हें वह दूर भगाने लगा। पहला व्यक्ति दूसरे की चिंता किये बिना ही अपनी तपस्या में लीन हो गया था।

एक दिन एक धोबी उस जंगल में आया। उन तपस्वियों के निकट एक अच्छे तालाब को देख कपड़े धोने लगा।

धोबी के द्वारा कपड़े धोते देख दोनों तपस्वियों के तप में विघ्न पैदा हुआ। पहले तपस्वी ने आँखें खोलकर देखा और धोबी पर मन ही मन खीझ उठा। मगर उसने अपना विचार बदल लिया और फिर वह तपस्या में लीन हो गया।

मगर दूसरे तपस्वी ने क्रोध में आकर धोबी को डाँटा—"अरे मूर्ख! तेरी अक्ल

संपत राय

कहाँ चरने गयी है? तुम यहाँ पर कपड़े धोते हुए हमारे तप में विघ्न डालते हो? तुरंत यहाँ से दूर चले जाओ।"

"महाशय, तुम्हारी तपस्या मेरे परिवार का पेट थोड़े ही भरनेवाली है! जाओ, मुझे अपना काम करने दो।" यों धोबी ने लापरवाही से जवाब दिया और फिर उसने कपड़े धोना शुरू किया।

दूसरा तपस्वी रोज़ धोबी के साथ झगड़ा करता रहा, मगर धोबी उस तालाब को छोड़ कहीं जाता न था।

कुछ दिन बाद वह धोबी मर गया। दूसरे तपस्वी ने भी अपनी इहलीला समाप्त की। कुछ दिन बाद पहला तपस्वी भी अपना देह त्याग कर स्वर्ग को जा रहा था, उसने दूसरे तपस्वी को नरक में यातनाएँ झेलते देखा। तब दूसरे तपस्वी ने पहले तपस्वी से पूछा-"महाशय, मुझे भी अपने साथ स्वर्ग में क्यों नहीं ले जाते? मैंने आपकी बड़ी सेवा जो की है?" इसके बाद पहला तपस्वी स्वर्ग में पहुँचा। वहाँ पर स्वर्ग के सुख भोगनेवाला धोबी उसे दिखायी दिया। इस पर उस तपस्वी ने अपने साथ चलनेवाले देवदूत से पूछा-"मेरे साथ तपस्या करनेवाला नरक में क्यों है? और हमारे तप में विघ्न डालनेवाले इस धोबी को स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो गयी है?"

इस पर देवदूत ने समझाया-"इस धोबी ने तुम्हारी तपस्या के शीघ्र सफल होने में मदद पहुँचायी है। इसने कपड़े धोते जो ध्वनि की, जिससे तुम अधिक एकाग्रता प्राप्त कर सके। इस धोबी ने केवल अपना कर्तव्य किया है, पर इसने कोई पाप नहीं किया है। पर तुम्हारे अनुचर ने कोई तपस्या नहीं की, उसका मन चंचल था। वह यह सोचकर पशु-पक्षियों को मार भगाता और धोबी के साथ झगड़ता था कि वह तुम्हारी तपस्या में भंग होने से रक्षा कर रहा है। इसलिए उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हुई। उसने मन पर नियंत्रण नहीं किया।"

कुशाग्रबुद्धि

एक नगर में एक राजा था। वह प्रति वर्ष एक विशेष सभा बुलाता और उसमें कुशाग्रबुद्धि वाले युवकों को निमंत्रण देता। राज्य का प्रधान मंत्री उन युवकों के साथ चर्चा करता और उनमें से चतुर एवं कुशाग्रबुद्धि वाले युवकों को अपने दरबार में नियुक्त करवाता था।

एक बार राजदरबार की गोष्टी में गणपति नामक युवक ने अपनी अनोखी कुशाग्रबुद्धि का परिचय दिया था।

प्रधान मंत्री ने उन युवकों से पूछा–"क्या तुम में से किसी ने हाथवाले लूले को देखा है?"

इसका उत्तर गणपति ने यों दिया–"मैं यहाँ आ रहा था। रास्ते में एक भिखारी कागज़ और क़लम हाथ में ले बैठा हुआ था। उसने मुझसे पूछा–'हुज़ूर, दान दीजिए!' मैंने थोड़े पैसे उसे दे दिये, झट उसने कागज़ पर लिख दिया–'दो।' मैंने पूछा–'तुम क्या लिख रहे हो?' भिखारी ने जवाब दिया–'हाथों के होते जो लूले नहीं, उनकी गिनती कर रहा हूँ!' उसका उद्देश्य है कि जो दान नहीं देते, वे हाथों के रहते हुए भी लूले हैं।"

"ऐसे ही आँखों के होते हुए भी अंधे हो सकते हैं न?" मंत्री ने कहा।

गणपति ने यों उत्तर दिया–"जी हाँ! एक बार मैं एक शहर में गया। वहाँ के एक घर पर ताला लगा था, मगर भीतर कोई आहट हो रही थी। मैंने चिल्लाकर पूछा–'भीतर कौन है?' लेकिन अन्दर से कोई जवाब न आया। मैंने तुरंत अड़ोस-पड़ोस वालों को इकट्ठा किया। एक चोर भागने की कोशिश में था। सब ने मिलकर उसे पकड़ लिया। उस चोर ने मेरी ओर देखकर कहा–'तुम जैसे आँखों

सुशीला यादव

के होते अंधे न बननेवाले कम लोग होते हैं। इसलिए मेरा पेशा आज तक चलता रहा।' इसलिए हमें समझना चाहिए कि घर पर ताला लगे देखकर भी भीतर की आहट पर ध्यान न देकर चले जानेवाले आँखों के होते हुए भी अंधे हैं।"

"जीभ के होते हुए भी मूक आदमी कौन हो सकते हैं?" मंत्री ने पूछा।

गणपति ने कहा–"एक बार मुझे एक अमीर के यहाँ कर्ज लेना पड़ा। जब ब्याज की बात उठी तब उसने मुझे से कहा–'जीभ के रहते हुए भी जो मूक हैं, उन्हें एक रुपये के एक महीने के चार आने ब्याज पर कर्ज देता हूँ, ऐसे जो नहीं होते, उनसे ब्याज वसूल नहीं करता।' मैंने इसका अर्थ पूछा। उसने बताया कि जो लोग उधार लेकर मियाद तक कर्ज के रुपये न देकर झूठ-मूठ के बहाने बताते हैं और जो लोग झूठ बताकर कर्ज माँगते हैं, वे भी जीभ के होते हुए भी मूक होते हैं।"

मंत्री ने एक और सवाल पूछा–"बिना कहे जाने वाली और बिना कहे आनेवाली चीज मौत के बिना कोई और है?"

गणपति ने कहा–"जवानी बिना कहे चली जाती है, इसलिए सावधान रहना चाहिए। इसी प्रकार भाग्य पर भरोसा रखकर हमें बरबाद नहीं होना है। ये बातें मेरे दादा मुझसे बराबर कहा करते थे।"

"क्या अनेक बार मरनेवाले भी होते हैं?" मंत्री ने पूछा।

इसका जवाब भी गणपति ने ही दिया–"इस नगर में मैंने रोनेवाली एक औरत को देखा। मैंने उससे पूछा–'बहन, रोती क्यों हो?' उसने जवाब दिया–'मेरी जिन्दगी रोने-धोने में ही बीतती जा रही है। मेरा वीर पुत्र दो साल पहले एक ही बार मर गया है। मगर मेरा पति क़ायर है जो दिन में दस बार मरता है।"

इस पर मंत्री ने राजा को सलाह दी कि गणपति को दरबार में नौकरी दी जा सकती है। राजा ने उसे नौकरी दी।

ज्ञानोदय

एक ज्ञानी जनता में तत्वोपदेश देकर उन्हें अच्छे मार्ग पर लाना चाहता था, इस विचार से उसने अपने नगर के नागरिकों को एक जगह इकट्ठा करके उन्हें नीति, धर्म, कर्म, भक्ति, मुक्ति एवं सच्चरित्र का ज्ञान कराना अपना कर्तव्य समझा। मगर जनता ने उसके उपदेश तो नहीं सुने, उल्टे उसके मुंह पर ही कहना शुरू किया कि उसे कोई काम-धंधा नहीं है, लोगों को धोखा देने के लिए कोई चाल चल रहा है।

ज्ञानी निराश हो किसी दूसरे नगर में चला गया। वहां पर भी यही बात हुई। एक और नगर में गया, वहां की भी यही हालत थी। इससे निराश हो उसने ज्ञान-बोध कराना छोड़ दिया और तपस्या करने जंगल में चला गया।

वहाँ पर एक डाकू ने उससे पूछा—"तुम्हारे पास जो कुछ हो, यहाँ रख दो।"

"मेरे पास कुछ नहीं है। मैंने जनता में तत्वोपदेश करना चाहा, पर जनता सुनने के लिए तैयार नहीं, इसलिए तपस्या करने यहाँ आया हूँ।" ज्ञानी ने जवाब दिया।

तुरंत डाकू ने अपना कुर्ता खोल पीठ पर की मारों के निशानों को दिखाकर कहा—"मैंने जब जब डाका डाला, तब तब इस प्रकार मार खायी, फिर भी मैंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। चाहे कोई भी काम करो, गालियाँ देनेवाले होते ही हैं। तुममें लगन नहीं है।"

ये बातें सुनने पर ज्ञानी में ज्ञानोदय हुआ और वह फिर लोगों के बीच जाकर ज्ञान-बोध करने चल पड़ा।

साहस और चोर

पुराने ज़माने की बात है। एक शहर में सोमगुप्त नामक एक बनिया था। वह व्यापार और वाणिज्य में समर्थ ही न था, बल्कि ईमानदार भी था। इसलिए शहर के अन्य व्यापारियों से ज़्यादा धनी बन गया। उसकी संपत्ति और यश को देख शहर के बाक़ी व्यापारी उसके साथ ईर्ष्या करने लगे।

एक बार शहर के सभी व्यापारी माल ख़रीद लाने के लिए चल पड़े। सब ने माल खरीदा, अपनी सवारियों पर माल लदवाकर वापस चल पड़े।

संध्या तक वे एक मण्डप के पास पहुँचे। उस रात को वहीं ठहरने का निश्चय किया। रसोई बनाकर खाना भी खा लिया। इसके बाद बाक़ी व्यापारियों ने सोमगुप्त से कहा—"भैया, पास के गाँव में कोई मेला लग रहा है। हम लोग देख आयेंगे। इसलिए हमारे लौटने तक तुम हमारे माल पर भी निगरानी रखे रहना।" सोमगुप्त ने मान लिया।

इसके थोड़ी देर बाद कुछ नक़ाब वाले लोग मण्डप के पास आये और सोमगुप्त के देखते-देखते व्यापारियों के बोरे उठाने लगे। सोमगुप्त ने उन्हें रोका, इस पर उन लोगों ने सोमगुप्त को खूब पीटा और माल के साथ भाग गये।

सोमगुप्त मारों की पीड़ा से परेशान था, साथ ही अपने अनुचरों के माल का भी नुक़्सान उसे भरना पड़ रहा है, इस बात का भी दुःख उसे सताने लगा। फिर भी उसने सोचा कि जो यह दुर्घटना हो गयी है, उसे अपने अनुचरों को बताना अपना कर्तव्य है, यह सोचकर वह उसी दिशा में आगे बढ़ा जिस दिशा में उसके

शोभाकांत

अनुचर गये थे। थोड़ी दूर जाने पर उसे मालूम हुआ कि कई लोग एक स्थान पर झगड़ रहे हैं, वह उस स्थान के निकट गया, वहाँ पर पेड़ों की ओट में छिपकर झगड़े को देखने लगा।

वहाँ पर सोमगुप्त का माल जो तीन लोग ले गये थे, उन्हें और एक और दल के बीच झगड़ा चल रहा है। सोमगुप्त ने उनकी बातों से जान लिया कि दूसरे दलवाले लोग भी चोर हैं।

"इन दुष्टों को हम अपने नेता के पास ले जायेंगे। हमारे प्रदेश में ये लोग चोरी नहीं कर सकते। इन्हें मार डालना होगा।" दूसरे दल का एक चोर कह रहा था।

यह बात सुनते ही नक़ाबवाले उस चोर के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगे–"भाई साहब, हम लोगों को मारो मत। हम चोर नहीं। यह सब हमारा ही माल है। हम व्यापारी हैं। हम ने हम में से एक आदमी को दगा देना चाहा, इसीलिए हमने यह वेष बनाये, जिसका फल हमें यों मिल रहा है! यह सारा माल ले जाओ और हमें प्राणों के साथ छोड़ दो।"

चोर ने उनकी बातों पर यक़ीन नहीं किया और कहा–"इस बात की गवाही क्या है कि तुम लोग चोर नहीं हो और झूठ नहीं बोल रहे हो? तुम लोग जो कुछ बतलाना चाहते हो, वह सब हमारे नेता के पास आकर बताओ।"

इस पर नक़ाब वालों ने अपने नक़ाब हटाकर कहा–"तुम्हीं बताओ, अब क्या हम चोरों के जैसे लगते हैं?"

"हाँ, हाँ! तुम लोग सचमुच मुझे चोरों जैसे लगते हो!" चोर ने कहा।

उस वक़्त सोमगुप्त ने आगे बढ़कर चोरों से कहा–"ये लोग चोर नहीं हैं। मेरे साथ व्यापार करनेवाले हैं। मुझ से शायद ये लोग जलते थे, इसलिए चोरों का वेष बनाकर इन लोगों ने अपने माल की चोरी आप ही ने की होगी। क्योंकि इस माल का पहरा देने ये लोग मुझे छोड़कर चले गये थे। अगर यह माल चुरा लिया गया तो, मेरा माल तो जायगा ही, साथ ही उनके माल का नुक़्सान भी मुझे भरना होगा। इसलिए इन लोगों ने मेरे साथ दगा करना चाहा, पर तुम्हें इन लोगों ने कोई दगा नहीं दिया। तुम लोग माल चाहो तो यह सारा माल ले जाओ; लेकिन इन लोगों को कोई तक़लीफ़ न पहुँचाओ। इन्हें छोड़ दो।"

चोरों ने आपस में चर्चा की। सोमगुप्त की उदारता पर वे बहुत प्रभावित हुए। तब उन लोगों ने सोमगुप्त से कहा–"चाहे इन लोगों ने किसी भी उद्देश्य से चोरी की हो, वह चोरी ही है। इसलिए हम इस सारे माल को लेकर तुम्हें दे रहे हैं। तुम योग्य और ईमानदार हो! यह सब माल तुम्हीं रख लो। इन्हें मत दो।" यों समझाकर चोर अपने रास्ते चले गये।

सोमगुप्त ने सब का माल बाँट दिया और व्यापारियों को डाँटते हुए कहा– "तुम लोगों से ये चोर भले आदमी लगते हैं! तुम लोगों ने मुझे नुक़्सान पहुँचाने के लिए अपने ही माल की चोरी की है। तुम लोग व्यापारी नहीं, चोर हो, डाकू हो, लुटेरे हो! इसीलिए तुम लोग व्यापार में कभी आगे बढ़ नहीं सके।"

इसके बाद सब व्यापारियों ने सोमगुप्त से माफ़ी माँगी। चपत लगाकर रो पड़े। उस दिन से वे लोग सोमगुप्त के अच्छे भक्त बन गये।

भीष्म ने दुर्योधन को दोनों दलों के महा वीरों का परिचय कराया, तब दुर्योधन ने भीष्म से पूछा–"दादाजी, युद्ध में शिखण्डी के सामने आने पर आप क्यों उसे मारना नहीं चाहते? आपने इसके पूर्व एक बार कहा था कि सोमकों के साथ सभी पाँचालों का वध करेंगे।"

भीष्म ने कहा–"मेरे पिता महाराजा शंतनु ने दीर्घकाल तक राज्य किया और वे स्वर्गवासी हुए। उसके उपरांत मैंने चित्रांगद को राजा तथा विचित्रवीर्य को युवराजा के रूप में अभिषेक किया। कुछ समय बाद चित्रांगद का देहांत हो गया। तब मैंने विचित्रवीर्य को राजा बनाया और उसकी सहायता करते मैंने शासन किया।

"जब वह विवाह के योग्य हुआ, तब मैंने योग्य कन्या के साथ उसका विवाह करने का निश्चय किया। उस वक़्त मुझे मालूम हुआ कि काशी राजा की तीन राजकुमारियों का स्वयंवर होने जा रहा है। उनके नाम अंबा, अंबिका और अंबालिका हैं। मैं अकेले ही रथ पर काशी की राजधानी में गया। उन अपूर्व सुंदर राजकुमारियों को देखा। स्वयंवर में आये हुए समस्त राजाओं को मैंने युद्ध के लिए ललकारा और तीनों राजकुमारियों को अपने रथ में बिठाकर कहा–"हे क्षत्रिय राजाओ, मैं इन तीनों कन्याओं को ले जा रहा हूँ। मैं शंतनु का पुत्र भीष्म हूँ। तुम लोगों से बन पड़ा तो इन कन्याओं को

५२. शिखण्डी की कहानी

छुड़ा लो।" इस पर वे सभी राजा रथों, घोड़ों तथा हाथियों पर सवार हो आयुधों के साथ मुझ पर टूट पड़े। मैंने उन पर बाणों की वर्षा करके उन्हें हराया। वे सब भाग गये।

"मैंने काशी राजा की पुत्रियों को लाकर सत्यवती को दिखाया और उन्हें बताया कि मैं इन कन्याओं को विचित्रवीर्य की पत्नियों के रूप में लाया हूँ। मेरे कार्य पर वह बहुत प्रसन्न हुईं। मैं विवाह के प्रयत्न कर रहा था, तब काशी नरेश की बड़ी कन्या अंबा ने मुझ से बताया कि उसने साल्व राजा को वर लिया है और उन दोनों ने विवाह करने का भी निश्चय कर लिया है। पर यह बात उसका पिता नहीं जानता है। अतः उसे साल्व राजा के यहाँ भेज दिया जाय। मैंने अपनी माँ सत्यवती तथा मंत्री एवं पुरोहितों के साथ परामर्श किया और उसकी सलाह से अंबा के साथ दासियों तथा रक्षकों को देकर उसे साल्व के पास भेज दिया।

"लेकिन साल्व ने अंबा को स्वीकार नहीं किया, उसने बताया कि भीष्म जिस कन्या को जबरदस्ती ले गया है, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। अंबा ने उसे समझाया कि मैं भीष्म की पत्नी नहीं बनी हूँ, उन्होंने ही मुझे सादर आपके पास भिजवा दिया है। फिर भी साल्व ने अपने विचार को नहीं बदला, उसने कठोर शब्दों में यही कहा कि तुम जहाँ जाना चाहती हो, चली जाओ।"

"अंबा की इस बुरी हालत के कई क़ारण थे, फिर भी उसने मुझ से बदला लेना चाहा और वह ऋषियों के आश्रम में चली गयी। वहाँ पर शैखावत्य नामक एक मुनि ने अंबा का सारा समाचार जानकर समझाया—"बेटी, मुनि आपके कष्टों को कैसे दूर कर सकते हैं?" इस पर अंबा ने उससे प्रार्थना की कि उसे जीवन से विरक्ति हो गयी है, इसलिए उसे तपस्या करने का तरीक़ा सिखलाया जाय।

"इसके बाद आश्रमवासी सभी मुनियों ने अंबा के बारे में चर्चा की, मगर वे कोई निर्णय नहीं कर पाये। उन लोगों ने अँबा को सलाह दी कि वह अपने पिता के पास चली जाय, पर अंबा ने नहीं माना, बल्कि उसने तपस्या करने का तरीक़ा बताने के लिए मुनियों पर ज़ोर डाला।

"उस समय वहाँ पर होत्रवाहन नामक एक राजर्षि आया। वह अंबा का नाना था। वह अंबा की कहानी सुनकर बड़ा दुखी हुआ और उसे समझाया—"बेटी, तुम तपस्या नहीं कर सकोगी। तुम जमदग्नि के पुत्र परशुराम के पास चली जाओगी तो वह तुमको भीष्म के पास पहुँचा सकता है। यदि इसके लिए भीष्म तैयार न होगा तो परशुराम उसके साथ युद्ध करके उसे मार सकता है।"

परशुराम महेन्द्र पर्वत पर तप कर रहा था, लेकिन उन लोगों को समाचार मिला कि परसों वह स्वयं आश्रम में आनेवाला है। परसों परशुराम वहाँ पर आया भी। वहाँ के मुनियों ने अंबा के साथ मिलकर उसकी पूजा की। वार्तालाप के संदर्भ में होत्रवाहन ने अपनी नातिन अंबा की कहानी परशुराम को सुनाकर उसके कष्टों को दूर करने की प्रार्थना की।

"बेटी, क्या तुम भीष्म के पास जाओगी? तुम जो चाहो, वही मैं कर सकता हूँ?" परशुराम ने अंबा से कहा। अंबा ने कहा—"मेरे कष्टों का मूल कारण भीष्म ही है। अत: उसका वध करने पर मेरा मन शांत हो सकता है।"

"परशुराम ने मेरा वध करने को तो स्वीकार नहीं किया, लेकिन अंबा को मेरे अधीन करने तथा मेरे स्वीकार न करने पर मेरे साथ युद्ध करने को स्वीकार किया। इसके बाद वह अंबा तथा कुछ ऋषियों को साथ ले कुरुक्षेत्र में आया। सरस्वती नदी के तट पर पड़ाव डाला और मेरे पास खबर भेजी कि मैं उसकी

इच्छा की पूर्ति करूँ। मैं एक गाय तथा कुछ ब्राह्मणों को साथ ले उसको देखने गया और उसकी पूजाएँ कीं।

परशुराम ने मुझ से पूछा–"भीष्म, तुम बलात्कार इस अंबा को क्यों ले गये? ले जाने के बाद तुम्हें अपने पास रखना चाहिये था, लेकिन इसको क्यों लौटा दिया? तुम्हारे कारण इसकी ज़िंदगी बरबाद हो गयी है। इस कन्या के साथ फिर विवाह कौन करेगा? साल्व ने इसे अस्वीकार किया है, इसलिए इसे तुम्हीं ग्रहण करो।"

"इस पर मैंने परशुराम को समझाया कि अंबा ने स्वयं अपनी इच्छा प्रकट की कि वह साल्व को चाहती है। इसलिए मैंने अपने भाई के साथ उसका विवाह न करके उसे साल्व के पास भिजवा दिया है।

"मेरा यह उत्तर सुनकर परशुराम ने मुझे धमकी दी कि अगर मैं उसकी बात न मानूँ तो वह मेरा तथा मेरे मंत्रियों का वध करेगा। मैंने उसको शांत करना चाहा। क्योंकि वे मुझे अस्त्र-शस्त्र देनेवाले गुरु हैं। यह बात भी मैंने उन्हें स्मरण दिलायी; इस पर उन्होंने हठ किया कि तब तो गुरु के आदेश का पालन करो। मैंने स्पष्ट बता दिया कि गुरु नहीं, स्वयं इंद्र आकर भी मुझ से अधर्म कराना चाहे तो मैं नहीं कर सकता, यदि अनिवार्य हो तो मैं युद्ध करने के लिए भी तैयार हूँ।

"हमने ऐसा प्रबंध कर लिया कि दूसरे ही दिन हम दोनों के बीच कुरुक्षेत्र में युद्ध हो। इसके बाद मैं हस्तिनापुर को लौट आया। सारा समाचार माताजी सत्यवती को सुनाया। उनका आशीर्वाद पाकर युद्ध के लिए तैयार हो रथ पर कुरुक्षेत्र के लिए चल पड़ा। परशुराम पहले ही वहाँ पर पहुँच चुके थे। हमारा युद्ध देखने के लिए सभी मुनि एक ओर खड़े हुए थे। मैं परशुराम को प्रणाम करके युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। हमने एक दूसरे पर इस प्रकार बाणों का प्रयोग

किया कि कभी कभी हम दोनों बेहोश हो जाते थे। हमारा युद्ध चौबीस दिन तक चला। तब जाकर परशुराम ने मान लिया कि वे हार गये हैं।

"इसके बाद परशुराम ने अंबा को समझाया–"तुम देखती हो न? मैं भीष्म को पराजित न कर सका। तुम चाहो तो भीष्म की शरण में जाओ।" इस पर अंबा ने मेरी शरण माँगने से अस्वीकार किया और मुझे मारने के लिए तपस्या करने चली गयी। तब परशुराम मुनियों को साथ ले महेन्द्रपर्वत पर चले गये। मैंने अंबा के पीछे कुछ आदमियों को भेजकर उन्हें आदेश दिया कि वे इस बात का पता लगाकर मुझे बतावे कि वह कहाँ जाती है और क्या करती है?

अंबा सीधे यमुना के तट पर स्थित मुनियों के आश्रमों में चली गयी। वहाँ पर उसने बारह वर्ष तक घोर तपस्या की। शिवजी ने उसे दर्शन देकर वर माँगने को कहा। अंबा ने मुझे जीतने का वर माँगा, शिवजी उसे यह बताकर अंतर्धान हो गये कि अंबा अगले जन्म में नारी के रूप में जन्मधारण कर पुरुष के रूप में बदल जायगी और युद्ध में मुझे मार डालेगी।

इसके बाद उसने चिता जला दी और यह कहकर उसने अग्नि में प्रवेश किया कि

"भीष्म को मारने के लिए मैं अग्नि-प्रवेश कर रही हूँ।"

ये सारी बातें सुनाकर भीष्म ने दुर्योधन को शिखण्डी का वृत्तांत बताया।

द्रुपद की पत्नी के कोई संतान न थी। द्रुपद भी भीष्म के हाथों में हार गया था, इसलिए उसने शिवजी के प्रति तपस्या की कि भीष्म को मारनेवाला पुत्र उसे प्रदान करे। शिवजी ने प्रत्यक्ष होकर बताया कि भीष्म को मारने योग्य स्त्री-पुरुष तुम्हें प्राप्त होगा।

इसके बाद द्रुपद की पत्नी गर्भवती हुई और उसने एक लड़की का जन्म दिया। मगर द्रुपद ने घोषणा करायी कि उसे एक पुत्र पैदा हो गया है। वह इस रहस्य को

कन्या के साथ विवाह करेंगे।" द्रुपद की पत्नी ने सलाह दी।

द्रुपद को वह सलाह अच्छी लगी। उसने दशार्ण राजा की पुत्री को शिखण्डी की पत्नी के रूप में चुना और सभी देशों के राजाओं के पास यह समाचार भेजा। दशार्ण राजा हिरण्यरोम बड़ा ही बलवान था। उसकी पुत्री का नाम भी शिखण्डी ही था। द्रुपद के साथ संबंध स्थापित करने में वह बहुत प्रसन्न हुआ। तब दोनों शिखण्डियों का विवाह हुआ।

कुछ समय बाद दशार्ण राजा की पुत्री यौवनवती बनी। तब उसे मालूम हुआ कि उसका पति पुरुष नहीं बल्कि नारी है। उसने यह समाचार अपनी सखियों को सुनाया। सखियों ने यह रहस्य दशार्ण राजा के कान में डाल दिया।

दशार्ण राजा द्रुपद की इस धोखेबाज़ी पर बहुत नाराज़ हुआ। उसने द्रुपद के पास अपने दूत को भेजा। दूत ने आकर अपने राजा के वचन द्रुपद से यों बताये—"दुष्ट, तुमने अपनी पुत्री के साथ मेरी पुत्री का विवाह करके मेरा अपमान किया है। मैं शीघ्र ही आकर तुम्हें तथा तुम्हारे मित्रों का वध करनेवाला हूँ।"

यह संदेशा सुनने पर द्रुपद के मुंह से बात न निकली। उसने दशार्ण राजा के

बहुत समय तक गुप्त रखता आया। द्रुपद क मन में इस बात का बड़ा विश्वास था कि शिवजी का वचन व्यर्थ न जायगा और उसकी लड़की लड़का बनेगी। उसने उस लड़की का नामकरण शिखण्डी किया।

शिखण्डी ने चित्र और शिल्पकलाएँ सीख लीं। उसने पुरुष के वेष में द्रोण के पास जाकर अस्त्र-विद्याएँ सीख लीं। कालांतर में वह युक्त वयस्का हो गयी। तब जाकर द्रुपद बहुत ही घबराया। शिवजी के वचन के अनुसार वह अब तक पुरुष के रूप में परिवर्तित न हुई थी।

"शिवजी का वचन कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। हम अपनी लड़की का योग्य

पास यही समाचार कहला भेजा–"मैंने तुम्हें धोखा नहीं दिया। इससे दशार्ण राजा संतुष्ट नहीं हुआ, उसने अपने दूत के द्वारा यही कहला भेजा–"मैं तुम्हारा निर्मूल करने के लिए अन्य राजाओं को साथ ले युद्ध करने आ रहा हूँ।"

द्रुपद घबरा गया और उसने अपनी पत्नी की सलाह माँगी–"अब क्या किया जाय, तुम्हीं बताओ?" इसके बाद उसने अपने परिवार को धोखा देने के लिए ऐसा अभिनय किया कि आज तक वह अपनी पुत्री को पुत्र मानकर भ्रम में पड़ा हुआ था।

अपने माता-पिता को कठिनाइयों में फँसे देख शिखण्डी ने प्राण त्याग करने का निश्चय कर लिया और घर छोड़ जंगलों में चली गयी। वह जंगल स्थूणाकर्ण नामक एक यक्ष के अधीन में था। शिखण्डी ने उस वन में रहते कुछ दिन उपवास किया।

एक दिन यक्ष ने शिखण्डी को देख पूछा–"तुम यहाँ पर क्यों रहती हो? तुम्हें क्या चाहिए! मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

"आप मेरी सहायता नहीं कर सकते?" शिखण्डी ने उत्तर दिया।

"मैं कुबेर का मित्र हूँ, तुम जो वर चाहो, सो मैं दे सकता हूँ?" यक्ष ने कहा। इस पर शिखण्डी ने उसे बताया कि वह कैसे एक पुरुष के रूप में पली और एक युवती के साथ विवाह करके कैसी विपदा में फँस गयी, उसके माता-पिता कैसे परेशान हैं!

"मैं कुछ समय तक तुम्हें अपना पुरुषत्व देकर तुम्हारे स्त्रीत्व को ले लूँगा। तुम्हारे पिता की विपदा के दूर होते ही फिर मेरे पुरुषत्व को मुझे लौटाकर अपने स्त्रीत्व को वापस ले लो।" यक्ष ने उत्तर दिया।

शिखण्डी ने प्रसन्न होकर ऐसा ही करने का वचन दिया। औरत के रूप में घर से निकलकर पुरुष के रूप में लौटे शिखण्डी को देख उसके माता-पिता अमित आनंदित हुए। इसके बाद द्रुपद ने दशार्ण राजा के पास

खबर भेज दी–"मेरा पुत्र मर्द ही है, चाहे तो वह खुद आकर देख ले।" दशार्ण राजा ने इस बात की सचाई का पता लगाने के लिए कुछ स्त्रियों को भेजा। उन स्त्रियों ने शिखण्डी की अनेक प्रकार से परीक्षा ली और लौटकर दशार्ण राजा को सूचित किया कि शिखण्डी नारी नहीं, पुरुष है। तब दशार्ण राजा स्वयं द्रुपद के यहाँ आया। द्रुपद तथा शिखण्डी के प्रति भी आदर प्रदर्शित करके अपनी पुत्री पर इस बात के लिए नाराज हो गया और तब वापस चला गया।

इस बीच कुबेर विमान पर विहार करते स्थूणाकर्ण वाले वन में आ पहुँचा। उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि स्थूणाकर्ण उसे देखने क्यों नहीं आया। कुबेर के दूत यक्ष को लाने जो गये, वे नारी रूप में स्थित स्थूणाकर्ण को कुबेर के पास ले आये।

यक्ष के नारी बन जाने का कारण सुनकर कुबेर नाराज हो गया और उसने शाप दे दिया–"तुम हमेशा औरत ही बनकर रहो।" बाक़ी लोगों ने कुबेर से प्रार्थना की कि यक्ष के शाप-विमोचन का कोई मार्ग बताये, तब कुबेर ने कहा कि शिखण्डी के मर जाने के बाद यक्ष को फिर पुरुषत्व प्राप्त होगा।

इसके बाद शिखण्डी ने यक्ष के पास लौटकर बताया–"महाशय, हमारी विपदा दूर हो गयी है। अब आप अपने पुरुषत्व को वापस ले लीजिये।" यक्ष ने यह कहकर उसे वापस भेज दिया कि कुबेर ने उसे शाप दिया है, इसलिए वह पुरुषत्व को जीवन पर्यंत रख सकती है।"

भीष्म ने इस प्रकार शिखण्डी का वृत्तांत सुनाकर कहा–"अंबा शिखण्डी के रूप में पैदा हो गयी है। मेरा व्रत है कि औरत के रूप में जन्म-धारण करने वालों तथा औरत के रूप में घूमनेवालों का मैं वध न करूंगा। इसीलिए मैं शिखण्डी के साथ युद्ध न करूंगा और शिखण्डी को मार नहीं सकूंगा।"

मित्र-भेद

दक्षिण भारत में महिलारूप्य नामक नगर पर राजा अमरशक्ती शासन करता था। वह बड़ा ही बलवान, दयावान, बुद्धिमान, ललित कलाओं में प्रवीण तथा राजनीति में भी चतुर था। उस राजा के वसुशक्ती, उग्रशक्ती और अनेक शक्ती नामक तीन पुत्र थे। तीनों पढ़ने में कच्चे थे, दुनियादारी का ज्ञान भी न रखते थे। इस कारण राजा अधिक दुखी था।

एक दिन राजा अमरशक्ती ने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा—"तुम लोग जानते हो कि मेरे पुत्र मूर्ख हैं! ज्ञान और सद्बुद्धि न रखनेवाले पुत्र बांझ गाय की भांति निरर्थक होते हैं। ऐसे पुत्रों को जन्म देने की अपेक्षा पत्नी का बांझ होना कहीं उत्तम है! हमारा सन्यास लेना भी अच्छा होता। इसलिए तुम लोग कोई ऐसा मार्ग बताओ जिससे मेरे पुत्रों में ज्ञान का विकास हो और वे राजनीति तथा शासन में दक्ष निकल सके!"

इस पर एक मंत्री ने सुझाया—"महाराज, इस नगर में विष्णुशर्मा नामक एक गुरु हैं। वे समस्त विद्याओं में निष्णात हैं। साथ ही वे बड़ी सरलता से शिक्षा दे सकते हैं। यदि महाराज अपने पुत्रों को उनकी सेवा में सौंप दे, तो वे अल्प काल में ही उन्हें राजनीति और दुनियादारी में दक्ष बना सकते हैं।"

राजा ने तत्काल ही विष्णुशर्मा को बुला भेजा और बताया कि यदि वे अपने पुत्रों को राजनीति तथा विवेक का ज्ञान करावे तो उन्हें सौ गाँव पुरस्कार में दिये जायेंगे।

इस पर विष्णुशर्मा ने कहा—"महाराज, मैं विद्या को नहीं बेचता। अस्सी साल

अंतिम पृष्ठ का चित्र

का हूँ, धन लेकर मैं क्या करूँगा? जो माँगते हैं, उन्हें विद्या का दान देना मेरा कर्तव्य है! छे महीनों में मैं आपके पुत्रों को राजनीति और विवेक का ज्ञान कराऊँगा।"

विष्णुशर्मा की बातें सुन राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने अपने पुत्रों को गुरु के हाथ में सौंप दिया। विष्णुशर्मा ने उन्हें पंचतंत्र को पांच भागों में पढ़ाया। वे हैं– मित्र भेद, मित्र संप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्ध प्रणाश और अपरीक्षित कारक। इस पंचतंत्र के द्वारा राजकुमार पांच महीने में राजनीति और विवेक में दक्ष निकले।
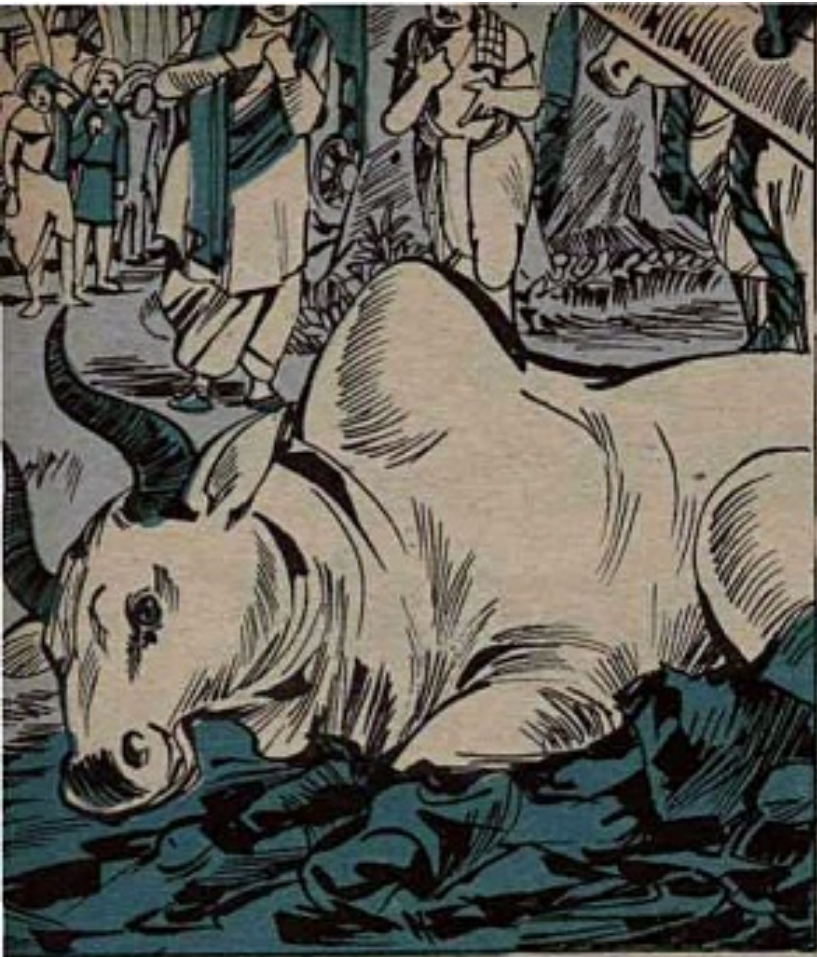
१. सिंह और बैल

दक्षिणदेश में महिलारूप्य नामक नगर में वर्द्धमान नामक एक व्यापारी रहा करता था। वह बड़ा ही धनी, नीतिवान और दानी भी था। वह बड़ी आसानी से धन कमाता और विवेकपूर्वक खर्च करता था। उसका सिद्धांत था कि धन खूब कमावे और खर्च भी करे।

एक दिन वर्द्धमान बैलगाड़ी पर क़ीमती माल लादकर यमुना तट पर स्थित मथुरा नगर के लिए चल पड़ा। एक गाड़ी में नंदीक और संजीवक नामक उत्तम जाति के दो बैल जुते हुए थे।

कुछ दिन बाद व्यापारी दल यमुना नदी के किनारे के एक जंगल में पहुँचा। उस जंगल में अनेक प्रकार के वृक्ष और जंगली जानवर भी थे। वहाँ पर संजीवक नामक बैल कीचड़ में पैर फिसल कर गिर पड़ा जिससे उसका पैर टूट गया।

वर्द्धमान बड़ा दुखी हुआ। पांच दिन तक अपनी यात्रा स्थगित करके संजीवक का इलाज कराया, लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ। वर्द्धमान को शीघ्र मथुरा पहुँच कर व्यापार का काम देखना था, इसलिए संजीवक की मदद के लिए गाडीवाले तथा एक सेवक को भी वहीं रहने का आदेश दिया, खर्च के लिए आवश्यक धन और

बैल के लिए चारा देकर कहा–"तुम दोनों बड़ी होशियारी से बैल की रक्षा करो, इसके स्वस्थ होते ही मेरे पास ले आओ। अगर यह बैल मर गया तो इसके दहन-संस्कार करके मेरे पास चले आओ।"

इस प्रकार उन्हें समझा कर वर्द्धमान अपनी अन्य गाड़ियों के साथ माल को मथुरा ले गया। उसके जाने के बाद गाड़ीवाला और सेवक जंगल में रहने से डर गये, बैल को वहीं छोड़ दूसरे दिन ही अपने मालिक के पास पहुँचे और उसे बताया कि बैल मर गया है। इसलिए उसके दहन-संस्कार करके सीधे यहाँ पर चले आ रहे हैं।

लेकिन खुश क़िस्मती से बैल स्वस्थ हुआ। आहिस्ते आहिस्ते चलते जंगल से होकर वह बैल यमुना के किनारे तक पहुँचा। नदी के किनारे की घास खाकर, यमुना का स्वच्छ जल पीकर वह बैल जल्द ही पूर्ण स्वस्थ हुआ। शिवजी के वाहन नंदी के समान बना। प्रसन्नता के मारे रंभाते चारों तरफ़ घूमने लगा।

उसी जंगल में पिंगलक नामक सिंह था जो सियारों तथा अन्य जंतुओं का एक दल बनाकर निवास करता था। एक दिन सिंह यमुना नदी में पानी पीने को गया, तब संजीवक की रंभाहट सुनकर वह डर गया कि ऐसी भयंकर ध्वनि करनेवाला यह विचित्र प्राणी कौन है? पर उसने अपने भय को प्रकट होने नहीं दिया, बिना पानी पिये बरगद के नीचे चला आया जो उसका निवास स्थान था। फिर भी उसका मन अशांत था और वह इसी के बारे में विचार करने लगा। बाक़ी जानवार उसे घेरे हुए थे। डरने पर भी सिंह की गंभीरता में कोई कमी दिखाई न दी। वन राजा के लिए मानव राजा की भाँति अभिषेक, पोशाक, शिक्षा आदि की ज़रूरत नहीं होती। प्रकृति ने ही राजा के रूप में उसकी सृष्टि की है।

सिंह के साथ रहनेवाले जानवरों में करटक तथा दमनक नामक दो गीदड़ थे।

वे दोनों सिंह के पास इसके पूर्व सेवा करनेवाले गीदड़ों के बच्चे थे। पर इस वक़्त उन्हें कोई पद न थे। दमनक ने भांप लिया कि सिंह नदी में बिना पानी पीये लौट आया है। वह अपने भाई करटक को कुछ दूर ले जाकर बोला– "भाई, तुमने देखा? हमारा राजा पिंगलक यमुना के पास पानी पीने गया और बिना पानी पिये अचानक क्यों लौट आया? उसका चेहरा उतरा हुआ क्यों है?"

इस पर करटक ने कहा–"भैया, राजा से संबंधित बातों में तुम दखल मत दो। इस प्रकार चंचल चित्तवाले दूसरों की बातों में नाहक़ दखल देने पर कील खींचनेवाले बंदर जैसे तुरंत नष्ट हो जाते हैं?"

"सो कैसे?" दमनक ने पूछा।

करटक ने नटखट बंदर की कहानी सुनायी: एक नगर के बाहर एक व्यापारी मंदिर बनाता था। रोज दुपहर को कारीगर खाना खाने नगर में चले जाते थे। वहाँ पर बड़े-बड़े लक्खड़ों को आरों से काटते थे।

एक दिन उस मंदिर के पास बंदरों का एक दल आ पहुँचा। एक विशाल पेड़ आधा काटा गया था। कारीगर जहाँ तक काट चुके थे, वहाँ पर एक कील जड़ाकर चले गये थे। सभी बंदर उछल-कूद करते खेल रहे थे, तब एक नटखट बंदर ने उस कील को देख सोचा–"यह कील यहाँ पर क्यों है?" तब उसने उस कील को अपने दोनों हाथों से ज़ोर से खींचा। कील के निकलते ही लक्खड़ के दोनों भाग जो अलग थे, मिल गये, बंदर उसके बीच दबकर मर गया।

करटक ने यह कहानी सुनाकर कहा– "इसीलिए मैंने बताया कि तुम दूसरों की बातों में दखल न दो। अरे पगले, हमारे राजा के दरबार में हमें कोई पद भले ही न हो, फिर भी राजा के झूठे आहार को खाकर हम अपने पेट पाल रहे हैं। इससे भी हम हाथ क्यों धो बैठे?"

(और है)

१३९. दुनिया की सब से बड़ी घड़ी

अमेरिका के न्यूजेर्सी राज्य के जेर्सी नामक नगर में "कालेट-पामालिस-एट" फैक्टरी पर यह घड़ी लगी हुई है। इसके "मुख" की चौड़ाई ५० फुट है। इस चित्र में अंकित मनुष्य के दोनों ओर दिखनेवाले चिह्न "५ मिनटों" के चिह्न हैं। प्रत्येक चिह्न की ऊँचाई ७ फुट की है। इस घड़ी में मिनट बतानेवाला कांटा एक दिन में लगभग छे फलांग चलता है। घड़ी के मुख पर ३४५ बल्ब लगे हुए हैं।

Photo by P. Sundaram
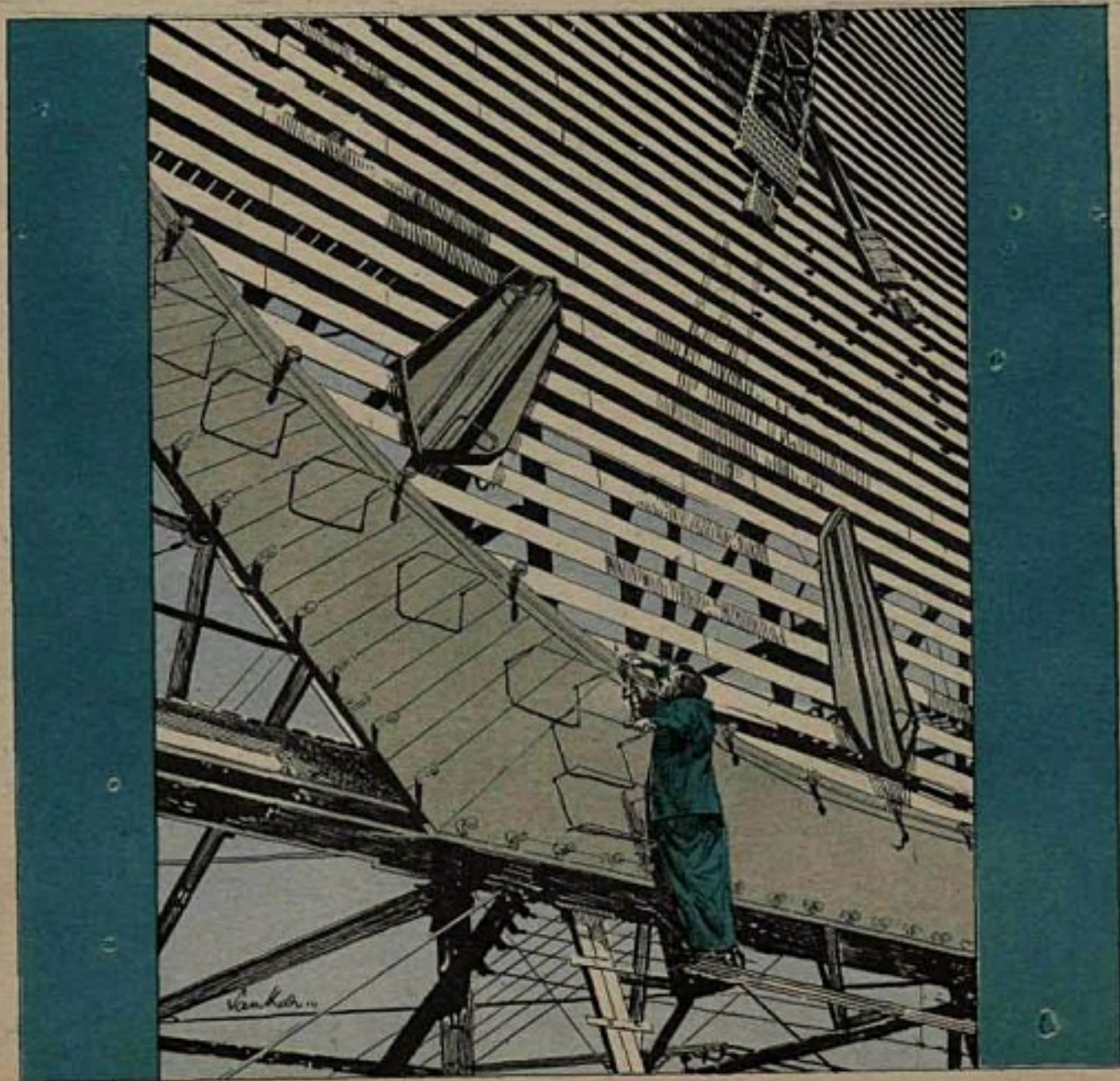
पुरस्कृत परिचयोक्ति

सब की आँखों को भानेवाले हैं!

प्रेषक: नरेन्द्रकुमार दुबे

Photo by D. N. Shirke
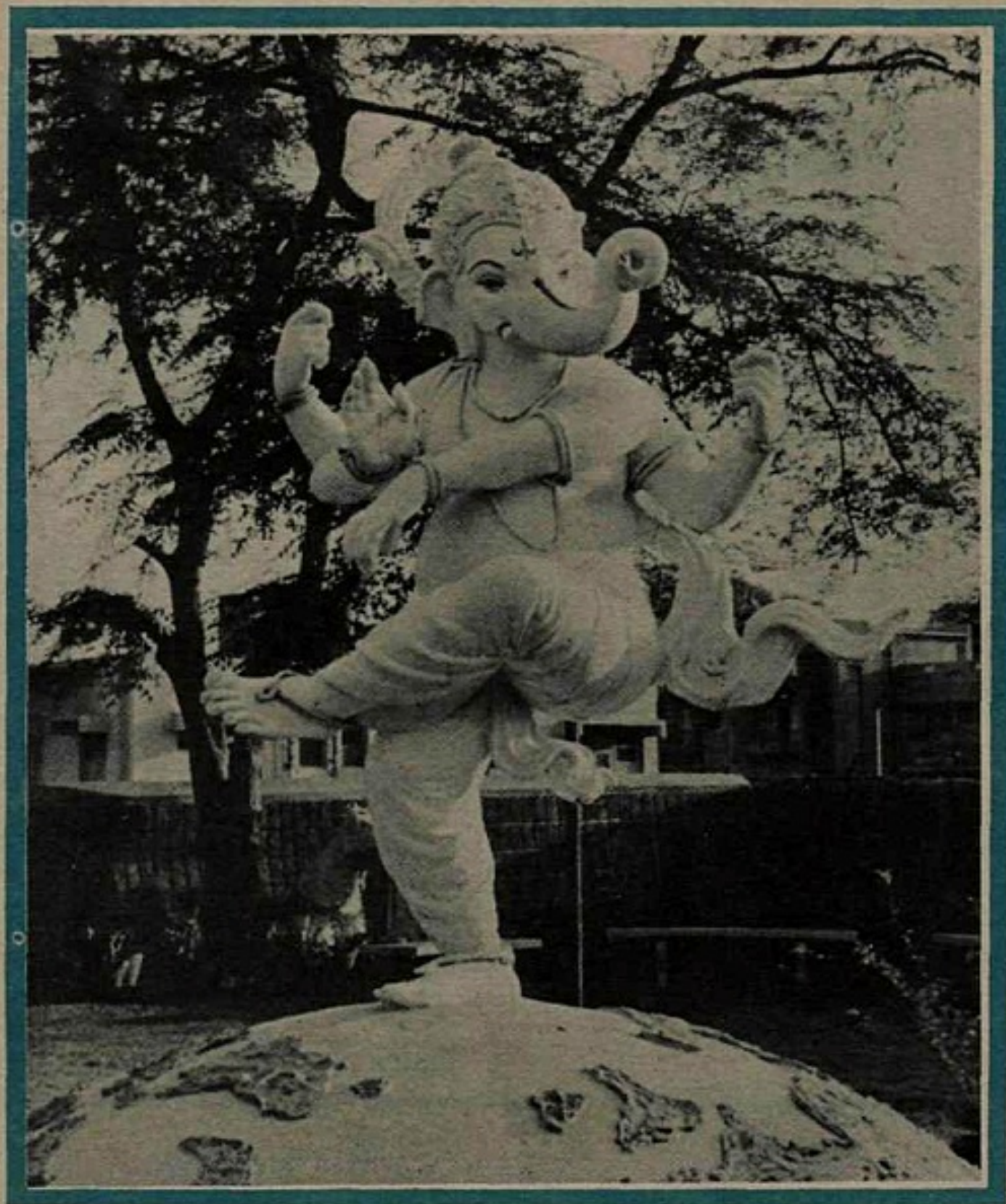
द्वारा गजानन दुबे, रेल्वे कॉलनी, खरसिया जि. रायगढ़

धरती के रखवाले हैं !

पुरस्कृत परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★

★ परिचयोक्तियाँ अगस्त ५ तक प्राप्त होनी चाहिए ।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अक्तूबर के अंक में प्रकाशित की जायंगी !

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

दूसरा मुखपृष्ठ:
पतवारवाली नाव

तीसरा मुखपृष्ठ:
पालवाली नाव

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Chandamama Publications, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

अपनी रक्षा आप...
डैडी, सुनील ने आज सवेरे मुझे मारा
तुमने वापिस क्यों नहीं मारा? अपनी रक्षा आप करना सीखो!
देखो, घूंसे से बचने के लिए या तो पीछे या बगल हट जाओ या ऐसे झुक जाओ कि वार खाली जाए।
घूंसे को कलाई पर भी रोक सकते हो।
या अपने भुजा या कंधे पर भी झेल सकते हो।
हाँ ऐसे। 'बॉक्सिंग' यानी अपनी रक्षा आप करने का यह तुम्हारा पहला सबक है।
बाप रे, बड़ी देर हो गयी। चलो सो जाएँ। रोहित, तुमने दाँत तो साफ कर लिए हैं न?
डैडी, मैं रोज़ सवेरे तो करता हूँ।
नहीं बेटे, ऐसे नहीं चलेगा। तुम्हें अपने दाँत हर रात और सवेरे ब्रश करने ही चाहिए। इससे दाँतों में फँसे सभी अन्न-कण निकल जाएँगे; दाँतों में सड़न नहीं होगी। तुम्हें मसूढ़ों की भी मालिश करनी चाहिए ताकि वे स्वस्थ और मज़बूत रहें।
चलो, हम दोनों फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट से अपने दाँत ब्रश कर लें।
हाँ, डैडी!
Forhans
FOR THE GUMS
फ़ोरहॅन्स
—दाँतों के एक डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट।

वार्षिक शुल्क के लिए सम्पर्क करें : डौल्टन एजेंसीज़, चन्दामामा बिल्डिंग मद्रास-२६

Photo by: A. L. SYED